सिडबी

संकल्प

त्रैमासिक हिंदी पत्रिका

जुलाई–सितम्बर, 2019

- उभर रहे हैं नये शब्द
- अपने–अपने सुख
- शिक्षा का महत्व
- गीता बजाज–एक समर्पित जीवन
- मरुभूमि की कोयल : मीराबाई
- डिज़्नीलैंड की सैर

गतिविधियां और उपलब्धियां

श्री अमित शाह, माननीय गृहमंत्री, भारत सरकार से राजभाषा कीर्ति पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री अजय कुमार कपूर, उप प्रबंध निदेशक, सिडबी

वित्तीय सेवाएं विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार से प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्रीमती अनिता सचदेवा, महाप्रबंधक (हिन्दी) सिडबी

सिडबी

संकल्प

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक का
हिन्दी त्रैमासिक
(निजी वितरण के लिए)
वर्ष 23 : अंक 91
जुलाई-सितम्बर, 2019

संरक्षक
श्री मोहम्मद मुस्तफा, आई.ए.एस.
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक

संपादक
अनिता सचदेवा

उप संपादक
आर.वी. सिंह
अतुल कुमार रस्तोगी

सहयोग
राकेश कुमार उज्ज्वल
लोचन मखीजा

●

अनिता सचदेवा
द्वारा
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
प्रधान कार्यालय
सिडबी टावर, 15, अशोक मार्ग,
लखनऊ-226 001
के लिए संपादित एवं लखनऊ से प्रकाशित
तथा
माहेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, मोतीनगर, लखनऊ से मुद्रित।

चित्रांकन : मोहित श्रीवास्तव

अनुक्रम

संपादकीय 2

भाषा-चिंतन
- ❖ उभर रहे हैं नये शब्द — ● महामहोपाध्याय कलानाथ शास्त्री 3

संस्मरण
- ❖ जिन्दगी-कैसी है पहेली! — ● द्वारिका प्रसाद अग्रवाल 5
- ❖ सेमल के आर्त्तनाद से उगी कविता — ● सुरेन्द्रनाथ कपूर 9

कहानी
- ❖ अपने-अपने सुख — ● डॉ. रश्मिशील 11
- ❖ मेरी परमीशन है — ● डॉ. विद्या श्रीवास्तव 16
- ❖ शिक्षा का महत्व — ● भुवनेश कुमार सेन 19
- ❖ टेलीफोन — ● ओमप्रकाश मंजुल 22
- ❖ छुट्टियाँ — ● जाबा चक्रवर्ती 35

आलेख
- ❖ गीता बजाज-एक समर्पित जीवन — ● वेद मखीजा 27
- ❖ मरुभूमि की कोयल : मीराबाई — ● डॉ. एम. शेषन 29

यात्रा वृत्तांत
- ❖ डिज़नीलैंड की सैर — ● वीणा गौतम 32

कविता
- ❖ अकेलापन — ● अक्षय कुमार 4
- ❖ तीन कविताएँ — ● अतुल कुमार रस्तोगी 10
- ❖ माँ मुझको तो अब उड़ना है — ● भावेश कुमार 15
- ❖ हे माँ ! तुझमें विश्व समाए!! — ● डॉ. संजय जोशी 26
- ❖ जीता हूँ — ● शक्ति सिंह 28
- ❖ मैं क्या जवाब दूँ ! — ● डॉ. सदा बिहारी साहू 36
- ❖ दो बाल गीत — ● डॉ. रामवृक्ष सिंह 37
- ❖ आधुनिक शिक्षा — ● सौरभ शुक्ला 37
- ❖ चले आओ, चले आओ — ● अनन्त भाष्कर राय 38
- ❖ एक लड़की जो जिन्दा रही — ● कंचनलता पाण्डेय 38

'संकल्प' में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक के स्टाफ सदस्यों तथा अन्य लेखकों की सहभागिता रहती है। इसमें प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों और तथ्यों की सत्यता की जिम्मेदारी लेखकों की है। यह आवश्यक नहीं कि संपादक मंडल तथा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक उनसे सहमत हो।

संपादकीय

विश्व की कोई भी भाषा तभी तक जीवन्त और प्राणवान रहती है, जब तक उसमें अनुसंधान और विकास का कार्य जारी रहता है। हिंदी भी एक विकासशील भाषा है। उसके व्याकरण और शब्दावली, दोनों में निरंतर बदलाव का क्रम जारी है।

'संकल्प का यह 91वाँ अंक अपने पाठकों को सौंपते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। विगत अंकों की ही भाँति इस अंक को भी हमने हिन्दी भाषा और साहित्य से संवलित करने का प्रयास किया है।

विश्व की कोई भी भाषा तभी तक जीवन्त और प्राणवान रहती है, जब तक उसमें अनुसंधान और विकास का कार्य जारी रहता है। हिंदी भी एक विकासशील भाषा है। उसके व्याकरण और शब्दावली, दोनों में निरंतर बदलाव का क्रम जारी है। इस विषय पर हमने एक लेख इस अंक में समाहित किया है।

आज का मानव-जीवन अनेक प्रकार की आधियों-व्याधियों और संघर्षों से आक्रान्त है। अपने जीवन की विसंगतियों से जूझकर, उनसे लोहा लेते हुए जो पार निकल जाए, वह मनस्वी ही मानव-समाज का नायक और आदर्श बनकर उभरता है। ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व यदा-कदा हमें अपने आस-पास दिख जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के संस्मरण और उन पर केन्द्रित आलेख भी हमने इस अंक में संजोए हैं।

कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। किन्तु साथ ही, वह समाज का दीपक भी होता है। इस नाते साहित्य की हर विधा में हमारे ही जीवन के राग-विराग, अनुभूतियाँ, विचार, आदर्श और विमर्श अनुस्यूत रहते हैं। इस अंक की कहानियों का ताना-बाना भी समसामयिक मानव-जीवन के विविध रंगों की छटा संजोए हुए है। इनमें आज के दुविधाग्रस्त आधुनिक जीवन का संत्रास और मानसिक ऊहापोह सहज ही देखी जा सकती है। साथ ही, एक यात्रा-वृत्तांत भी इस अंक में समाहित है, जिसके जरिए पाठकगण हांगकांग के डिज्नीलैंड की संक्षिप्त यात्रा का आनंद ले पाएंगे।

राजभाषा की दृष्टि से सितंबर माह का विशेष महत्त्व है। 14 सितंबर सन् 1949 के दिन भारत की संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा अंगीकार किया था। उस स्मृति को दुहराते हुए प्रतिवर्ष सितंबर माह में केंद्र सरकार के सभी कार्यालयों में हिन्दी सप्ताह, पखवाड़ा आदि मनाने की परंपरा रही है। सिडबी के लिए यह वर्ष विशिष्ट उपलब्धियों का वर्ष रहा। 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के अवसर पर सिडबी को वर्ष 2018-19 में राजभाषा नीति के श्रेष्ठ कार्यान्वयन के लिए देश के माननीय गृहमंत्री श्री अमित शाह से नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित भव्य समारोह में राष्ट्रीयकृत बैंकों की श्रेणी में द्वितीय राजभाषा कीर्ति पुरस्कार प्राप्त हुआ। पुरस्कारों के क्रम में वित्तीय सेवाएँ विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार से भी वर्ष 2018-19 के लिए सिडबी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। पुरस्कार समारोहों की सचित्र झलकियाँ भी अंक में समाहित है।

यह अंक आपको कैसा लगा? कृपया अपनी समीक्षात्मक टिप्पणियों से हमें अवगत कराएँ ताकि आपकी इस पत्रिका के आगामी अंकों को हम आपकी रुचि और अपेक्षानुरूप बना सकें।

(अनिता सचदेवा)

उभर रहे हैं नये शब्द

● महामहोपाध्याय कलानाथ शास्त्री
जयपुर

अभिव्यक्ति की नई-नई अपेक्षाओं के फलस्वरूप जन्मे शब्द अधिक सटीक, सार्थक और लोकप्रिय सिद्ध होते हैं। इसके कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऐसी अभिव्यक्तियाँ बहुधा अन्य भाषाओं से आती हैं, कभी-कभी समाचार-पत्रों के माध्यम से, कभी किसी घटना-विशेष के कारण प्रयुक्त शब्द के लोकप्रिय हो जाने से। इनमें कब कौन-सा शब्द लोक-कंठ में बैठ जाएगा, कहा नहीं जा सकता। पाठकों को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पूर्व ही राजस्थान के दिवराला गाँव में सती हुई रूपकंवर ने अनेक शब्द प्रसारित करवा दिए थे। इस घटना ने एक सती-निवारण अधिनियम भी बनवाया। तब से एक शब्द इतना प्रचलित हुआ कि शब्द-कोश में उसका स्थान सुरक्षित हो गया। शब्द है महिमा-मंडन। संस्कृत व्याकरण से तो यह अशुद्ध है, पर इतना सटीक और महिमामय शब्द है कि 'ग्लोरिफिकेशन' शब्द से अधिक सशक्त और गूँज भरा लगता है। इससे पहले हमने इसे चलता नहीं देखा था। अब इतना चल गया है कि सती के लिए ही नहीं, किसी भी व्यक्ति या सिद्धान्त के लिए 'महिमा-मंडन' करने की बात लच्छेदार लगती है।

शहीद हो जाने की लम्बी परंपरा स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में चली थी। पर शहीद शब्द के लिए कोई हिन्दी पर्याय जम नहीं पाया था। वैसे हमारे मत में शहीद भी हिन्दी का ही है। इसे उर्दू मानकर पराया समझना परले सिरे की अनभिज्ञता है। फिर भी संस्कृतनिष्ठ शब्द की तलाश करनी हो तो आसानी से ऐसा शब्द नहीं मिल पाता। मराठी और गुजराती भाषाओं के अहाते से इसके लिए इतना अच्छा शब्द आया है कि उससे सारा अर्थ ध्वनित हो जाता है। शब्द है 'हुतात्मा'। बम्बई जैसे शहरों में शहीद चौक की बजाय 'हुतात्मा चौक' शब्द बहुत प्रसिद्ध हो गया है। ऐसे अनेक शब्द अभिव्यक्ति की आवश्यकता से जन्म लेकर शब्द-कोश में जा मिलते हैं और समृद्धि के वाहक बनते हैं।

'महा' कहाँ लगाएँ ?

यह अवश्य है कि ऐसे शब्दों को बनाने या मिलाने के पूर्व आगा-पीछा अवश्य सोच लेना चाहिए। बहुधा अपने सयानेपन का प्रदर्शन करने के लिए ऐसे शब्द गढ़ दिए जाते हैं, जो कभी-कभी उल्टे पड़ जाते हैं। हमें याद है कि महाविद्वान राहुल सांकृत्यायन को महिमामंडित करने के लिए हिन्दी वालों ने एक अघोषित उपाधि चलाई थी, 'महापंडित'। राहुल जी के लिए उन दिनों यह शब्द बहुत चलता था। (जैसे महादेवीजी के लिए 'महीयसी' चलता रहा है)। किन्तु संस्कृत वाले इसे सुनते ही घबरा जाते थे। कारण यह था कि संस्कृत में यह परंपरा है कि पंडित, ब्राह्मण, यात्रा, मार्ग, निद्रा आदि शब्दों के पहले 'महा' विशेषण लगने से उल्टा अर्थ निकलता है। 'महापंडित' का अर्थ मूर्ख होता है। 'महाब्राह्मण' का अर्थ श्मशान में या मृत्यु के अवसर पर भोजन करने वाले का संदर्भ देता है। 'महायात्रा' अन्तिम यात्रा को कहते हैं, 'महामार्ग' अन्तिम यात्रा के मार्ग और 'महानिद्रा' मृत्यु को। इसीलिए इन शब्दों के साथ 'महत' शब्द न लगाने का निदेश संस्कृत में है। इसके बावजूद 'हाइवे' का शब्दानुवाद करने के चक्कर में उसे एक कोशकार ने 'महामार्ग' बना दिया। 'महामार्ग' इंजीनियरी (हाईवे इंजीनियरी) शब्द-कोशों में आ भी गया। शायद अब तक भी हो। हमने उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया। तब उसे पूरा शब्दानुवाद करके 'उच्च मार्ग' बना दिया गया। बहुधा नेशनल हाइवे को 'राष्ट्रीय उच्च मार्ग' कह दिया जाता है। होना चाहिए 'राष्ट्रीय राजमार्ग'। शायद किसी को ध्यान आ जाए और यह सही शब्द चल जाय।

स्वयंभू- एक ऐसा ही शब्द गढ़कर बनाया गया है- स्वयंभू। स्वयंभू नेता, स्वयंभू सेनानी आदि। अपने-आपको सेनापति या नेता कहनेवालों के लिए यह शब्द बहुत चल रहा है, जबकि है असंगत। 'स्वयंभू' का अर्थ होता है जो स्वयं पैदा हुआ हो, किसी के द्वारा (माता-पिता) पैदा न किया गया हो। इसलिए सबसे पहले ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता को 'स्वयंभू' कहते हैं। यहाँ शायद कहनेवाला यह कहना चाहता हो कि अपने मुँह, अपने-आप वह व्यक्ति सेनापति बन गया। ऐसी अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द है- स्वघोषित। उससे शायद संतोष न हुआ हो, इसलिए 'स्वयंभू' शब्द लिखना पडा। किन्तु वह सही अर्थ नहीं देता।

विशेषण कैसे बनाएँ?

कभी-कभी शीर्षस्थ विद्वान भी नये और चुटीले शब्द गढ़ने की ललक में ऐसे शब्द लिख जाते हैं, जो व्याकरण की दृष्टि से सही नहीं होते। संस्कृत व्याकरण के विपरीत होने के कारण वे अन्य भाषाओं के विद्वानों को भी स्वीकार्य नहीं होते और सार्वदेशिक रूप से भी नहीं चल पाते। इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण तो संस्कृतनिष्ठ शैली बनाने की तलब से पैदा हो जाते हैं। मूर्धन्य कथाकार शिवानी जी संस्कृत की विदुषी

थीं और मंझी हुई शैली की स्वामिनी। वे अपनी कहानियों में जो विशेषण लिखती थीं, उनमें भी स्त्रीलिंग, पुल्लिंग लगाती चलती थीं, जैसे 'नाभिदर्शना साड़ी', 'महीयसी महिला' आदि। हिन्दी में विशेषण का लिंग भी विशेष्य के साथ बदले, यह जरूरी नहीं है। 'आपकी कविता सुन्दर रही' कहना ही पर्याप्त है। 'आपकी कविता सुन्दरी रही' कहना जरूरी नहीं है। वह भद्दा भी लगता है। पर संस्कृत शैली लच्छेदार लगती है। इसलिए ऐसी अभिव्यक्तियाँ हिन्दी में खूब चल गयी हैं। किन्तु यह सतर्कता नहीं बरती जाती कि यह देख लिया जाए कि उस विशेषण के साथ विशेष्य के रूप में जो शब्द लगा है, वह स्वयं भी स्त्रीलिंगी है या नहीं। शिवानी जैसी कोई मंझी हुई लेखिका भी यदि इस चक्कर में 'पटीयसी कौशल' (अर्थात् चतुरता भरी होशियारी) लिख जाए तो भी उसे व्याकरण से सही नहीं माना जा सकता। 'कौशल' शब्द पुल्लिंग है। अतः या तो 'पटीयान् कौशल' लिखना चाहिए, जैसाकि संस्कृत में बनता है, या 'कुशल पटुता' जैसा कोई शब्द (संदर्भ- उपन्यास 'कस्तूरी मृग')।

बहुत-से विद्वान इसी शैली की नकल करते हुए गंगा को 'पुण्य तोया' या 'पुण्य सलिला' कहते हैं। यहाँ तक तो ठीक है, पर बहुत को हमने गंगासागर तीर्थ को भी 'पुण्य तोया' लिखते देखा है, जो गलत है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार 'वीरभोग्या वसुन्धरा' लिखते-लिखते 'वीरभोग्या देश', 'वीरभोग्या प्रदेश' या 'वीरभोग्या राजस्थान' लिख दिया जाय, या 'महती भूमिका' लिखते-लिखते 'महती दायित्व' लिख दिया जाए।

हमने आजकल के कुछ विद्वानों को भी ऐसे शब्द लिखते देखा है, इसीलिए कह रहे हैं। एक बहुत बड़े विद्वान, जो अब नहीं रहे, उन्होंने स्व. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्हें 'पौरुषेय सौन्दर्य का धनी' बता दिया। उनका आशय था, पुरुषोचित सौन्दर्य या पुरुष में जो सौन्दर्य हो सकता है, उसके धनी। उन्होंने संस्कृत का प्रत्यय तो लगा दिया, पर यह नहीं देखा कि इसका अर्थ निकलता है पुरुष से पैदा हुआ। वेदों को 'अपौरुषेय' इसीलिए कहा जाता है कि उन्हें किसी व्यक्ति ने नहीं बनाया। 'पौरुषेय' हुआ व्यक्ति-निर्मित। अतः इस प्रसंग में यह शब्द अनुपयुक्त है। नये शब्द गढ़ने या संस्कृत-निष्ठ शैली की ललक में ऐसे मुहावरे बनाने पर संयम रखना आवश्यक है।

❑❑❑

कविता

अकेलापन

● अक्षय कुमार
सूरत शाखा कार्यालय

अक्सर डरते हैं सब, अकेले रह जाने से,
पर सच कहूँ तो अकेलापन इतना बुरा भी नहीं।
माना सफर आसान हो जाता है,
अगर हो कोई हमसफर कदम से कदम मिलाने को,
पर अकेले चल अपने छोटे-छोटे कदमों से बड़ी-बड़ी सड़कें नापना इतना बुरा भी नहीं।
माना फीकी चाय भी स्वादिष्ट लगने लगती है,
अगर बैठा हो कोई मेज के उस पार,
पर कभी-कभी अकेले बैठ प्याले से निकलते हुए धुएं में खुद को खोजना
इतना बुरा भी नहीं।
माना- शोर में खुल के चिल्लाने से
चीखें सुनाई नहीं देती,
पर कभी किसी कोने में दुबक कर
अपने आसुंओं को बेबाक रिहा कर देना
इतना बुरा भी नहीं।
माना कोई हमसे प्यार करता है,
इस खयाल से ही जीने की वजह मिल जाती है,
पर कभी-कभी दूसरों को नजरंदाज कर,
खुद को खुद से गले लगाना,
इतना बुरा भी नहीं।
सच कहूँ तो कभी-कभी
सिर्फ अकेलापन ही चाहिये होता है,
खुद को और दूसरों को समझने के लिए,
अपने बिखरे हुए अंशों से एक तस्वीर बनाने के लिए,
यह देखने के लिये कि जब सूरज की किरणें आपको रंग जाती हैं,
तो आप बेहद ही खूबसूरत लगते हैं।
यह समझने के लिए कि
चाहे जितने भी लोग आपके साथ क्यों न चल लें,
कुछ सफर आपको अकेले ही तय करने होते हैं।
सच कहूं तो अकेलापन उतना ही खूबसूरत है,
जितना किसी के साथ होना।
उतना ही पाक- जितना मंदिर में जल रहा अकेला दीया।
उतना ही सुकून देने वाला- जितना माँ का आँचल।
सच कहूँ इतना बुरा भी नहीं अकेले हो जाना।

❑❑❑

जिन्दगी–कैसी है पहेली!

● द्वारिका प्रसाद अग्रवाल
बिलासपुर

कैंसर से मेरी पहली मुलाकात सन् 2002 में हुई थी। छह वर्ष बाद फिर हो गयी। अब तक दोनों बेटियाँ ब्याह गयी थीं, कर्ज पट गये थे। लॉज का कारोबार अच्छा चल निकला था। माधुरी (मेरी धर्मपत्नी) ने काम-काज अच्छे से सीख-समझ लिया था। इसलिए मुझे अपने जीवन से विदा लेने में कोई असुविधा नहीं थी। रही बात कष्ट की, सो जितनी तम्बाकू खायी थी, जितना मजा लिया था, उसका फल भी तो मुझे ही भुगतना था!

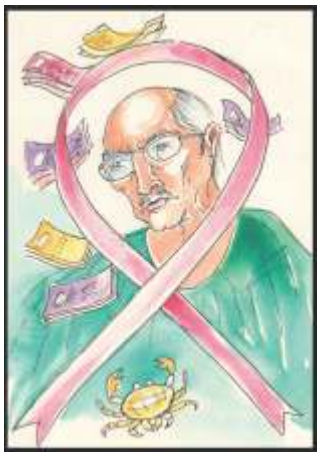

असल में जून 2008 में ही मेरे मुँह में पनप रहे कैंसर ने अपने पैर पसारने शुरू कर दिए थे। चौबीसों घंटे कनपटी, दाढ़ और कान में तीखे दर्द का एहसास बना रहता था। मैंने दो माह तक होम्योपैथी दवा ली, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हो रहा था। 2 अगस्त को भोपाल के लायन्स क्लब में आयोजित 'कैबिनेट मीटिंग' में मुझे 'संगठन प्रबंधन' पर व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। मुँह में दर्द बहुत अधिक था। बोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी। फिर भी आयोजक को किए गए वादे से मुकरना मुझे नापसंद था। इसलिए दर्द की दशा में मैं भोपाल गया और दो घंटे की प्रस्तुति दी। पूरे चेहरे में दर्द और बढ़ गया। भोपाल से मैं जबलपुर चला गया और अपने भानजे डॉ. विकेश अग्रवाल से सलाह ली। उन्होंने मुझे आंकोलाजिस्ट डॉ. अर्पण मिश्रा को दिखाया। डॉ. मिश्रा ने रोग के तेजी से बढ़ने की चेतावनी और तुरन्त सर्जरी करवाने की सलाह दी। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। निर्णय लेने की किसी भी चूक का परिणाम घातक हो सकता था। मैं कैंसर से लड़ने की बजाय उसे तटस्थ भाव से देखना चाहता था, जबकि बेटी संगीता और दामाद केदार मुझे यह आजादी देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने इन्दौर में 21 अगस्त को सर्जरी निश्चित करवा दी। पहली सर्जरी में हुआ भयानक कष्ट मुझे याद था। अगली सर्जरी और भी गहरी और गंभीर होनेवाली थी। संभावित पीड़ा की कल्पना से मैं रह-रहकर काँप उठता। लेकिन मेरे सामने दो ही विकल्प थे, या तो सर्जरी का तात्कालिक कष्ट सहूँ, या मृत्यु की प्रतीक्षा का अनिश्चितकालीन कष्ट। अंततः मैंने सर्जरी को चुना।

18 अगस्त की शाम को संगीता का फोन आया और उसने मुझे अगली सुबह 'सेकंड ओपीनियन' के लिए मुम्बई चलने को कहा। 19 अगस्त की सुबह की फ्लाइट से हम मुम्बई पहुँच गये और कोकिलाबेन धीरूभाई अंबानी हास्पिटल के आंकोलाजी विभाग में डॉ. मन्दार देशपाण्डे के सामने बैठे थे। अस्पताल नया था, हाल में शुरू हुआ था, जबकि डाक्टर पुराने और अनुभवी, किन्तु युवा थे। डॉ. मन्दार देशपाण्डे को मुम्बई के टाटा मेमोरियल कैंसर हास्पिटल में मुँह की शल्यक्रिया का दीर्घ अनुभव था। अब वे इस अस्पताल में कार्यरत थे। डॉ. देशपाण्डे ने मेरी जाँच की, इन्दौर की रिपोर्ट देखी और कहा–"अंकल, आपकी सर्जरी करनी पड़ेगी, सुप्रा मेजर सर्जरी होगी। गाल खोलकर हड्डी निकालनी होगी और फिर प्लास्टिक सर्जरी से उसे आपकी जाँघ से माँस का टुकड़ा निकालकर वहाँ जोड़ेंगे, ताकि आपका चेहरा एक तरफ धँसा हुआ न दिखे। चेहरा एकदम जस का तस नहीं बन पाएगा, या तो एक तरफ थोड़ा दबेगा या बढ़ सकता है।" "ठीक है" मैंने कहा। "सर्जरी के बाद आपको बारह से चौदह दिनों तक अस्पताल में रहना होगा और छुट्टी होने के बाद लगभग दो माह मुम्बई में ही रुकना पड़ेगा, ताकि आपकी रेडियोथेरेपी की जा सके।"

"मैं सर्जरी करवाने के लिए तैयार हूँ, लेकिन रेडियोथेरेपी नहीं करवाऊँगा।" "मेरा अनुमान है कि सर्जरी के बाद रेडियोथेरेपी तो करनी ही पड़ेगी।"

"फिर मुझे न सर्जरी करवानी है, न रेडियोथेरेपी। मैं चलता हूँ। आपको धन्यवाद।"

"मैं एक बात कहूँ अंकल?"

"जी, कहिए।"

"आप अगर मेरे पापा होते तो मैं यह चान्स अवश्य लेता।"

"आपने बहुत गंभीर बात कह दी।"

"जी, मैं अपने अनुभव के आधार पर सलाह दे रहा हूँ कि आप सर्जरी और रेडियोथेरेपी के लिए खुद को तैयार करें।"

"तो फिर ठीक है, कर दीजिए। कब करेंगे?"

''आज आपकी बायप्सी ले लेते हैं। आठ दिन में रिपोर्ट आ जाएगी। उसके तीन दिन बाद आपकी सर्जरी।''

''डाक्टर साहब, अच्छा, यह बताइए कि बायप्सी क्यों करते हैं?''

''कैंसर कन्फर्म करने के लिए।''

आपने अभी मेरा गाल चेक किया। क्या आपको लगता है कि अब भी कुछ कन्फर्म करने की जरूरत है?''

''आपको कैंसर है। पक्का है। मुझे दिख रहा है। लेकिन पेशेन्ट की और तसल्ली के लिए बायप्सी करवाते हैं।''

''क्यों आप आठ दिन का समय निरर्थक नष्ट करते हैं? आप कल मेरी सर्जरी कर दीजिए।''

''ऐसा क्या!'' डॉक्टर ने पूछा।

''जी। शुभस्य शीघ्रम'' मैंने कहा।

डॉक्टर ने बताया कि एक दिन तो कुछ परीक्षणों में लगेगा, उसके बाद यदि 21 को ओटी खाली हुई तो आपरेशन कर देंगे। मालूम किया तो पता चला कि इक्कीस को ओटी खाली नहीं है, लिहाजा 22 को करना तय हुआ।

फिल्म 'चलती का नाम गाड़ी' में किशोरकुमार ने गाया था- 'जाना था जापान, पहुँच गए चीन, समझ गए ना!' इसी तरह मुझे सर्जरी के लिए इन्दौर जाना था, लेकिन मैं मुम्बई पहुँच गया। रात को जब भर्ती होने के लिए काउंटर पर गए तो मालूम हुआ कि 'सुप्रा मेजर सर्जरी' का 'ट्विनशेयर' में पैकेज दो लाख पचहत्तर हजार का है और एक लाख अस्सी हजार रुपये अभी जमा करने हैं, तब एडमिशन होगा। हमने अस्पताल में स्थापित एटीएम से साठ हजार निकाल लिए, लेकिन रात को दस बजे शेष एक लाख रुपये कहाँ से आते? हमारे मित्र रमेश जोबनपुत्रा के बहनोई रजनीकान्त गढ़िया मुम्बई में रहते हैं। संयोग से वे उस समय हमारे साथ थे। उन्होंने कहा- ''आधा घंटा रुकिए। मैं अपने घर से लेकर आता हूँ।''

रात को ग्यारह बजे मैं अस्पताल के बिस्तर पर लेटा था। लेटते ही प्रोसीजर शुरू हो गया। 20 को पत्नी और दामाद भी मुम्बई आ गये। दिन भर स्कैन, एक्स-रे, खून-पेशाब-एड्स आदि की जाँच चलती रही। शाम को डा. देशपाण्डे ने फोन किया- ''आपकी सब रिपोर्टें मेरे कंप्यूटर पर आ गयी हैं। सब नार्मल है। कल सुबह जिस मरीज की सर्जरी होनी थी, वह शुगर बढ़ जाने के कारण पोस्टपोन हो गयी है।

21 अगस्त को ऑपरेशन थिएटर जाते समय सबने मुझे शुभकामनाएं दीं। मैं भी जवाब में मुस्कुराया। स्ट्रेचर पर मुझे 'प्री सर्जरी रूम' में ले जाया गया। वहाँ और भी कई मरीज लेटे हुए थे, जो अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत देर तक मैं वहाँ लेटा रहा, निर्विकार भाव से। बीच-बीच में उठकर अन्य मरीजों को देखता और फिर वापस लेट जाता। तब ही अनेस्थेसिस्ट डॉ. अपर्णा दाते मेरे समीप आयीं और बोली- ''अंकल, चलें!''

''मैं कबसे इन्तजार कर रहा हूँ। चलिए!''

कुछ देर बाद मैं एक शानदार ऑपरेशन थिएटर की तेज रोशनी वाली लाइट के नीचे लेटा हुआ था। डॉ. दाते ने हाथ की नस में धीरे से एक 'इंजेक्शन' लगाया। उसके बाद क्या हुआ, मुझे क्या पता! आंकोलाजिस्ट डॉ. मन्दार देशपाण्डे और प्लास्टिक सर्जन डॉ. चारुदत्ता चौधरी ने मेरी सर्जरी की। हमारी बिटिया संगीता को भी ओटी में अपने पापा की सर्जरी देखने का अवसर मिला।

''हूँ..., देखो, मैं हूँ।'' मुझे आवाज सुनाई पड़ी। मैंने आँखें खोलीं, सामने माधुरी खड़ी थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता उमड़ रही थी, होठों में मुस्कान और चेहरा आश्वस्त। मैंने अपने बाएँ हाथ से उनके गाल छुए। उन्होंने मेरे हाथ की गदेलियों को अपनी दोनों गदेलियों से लपेट लिया। मेरी आँखें भर आईं, गला रुँध गया। हम दोनों के मध्य एक मौन संभाषण हुआ। उस संभाषण को शब्दों में कैसे बताऊँ! मेरे मुँह में रुई ठुंसी हुई थी, किसी तरह बुदबुदाते हुए मैंने उनसे पूछा- ''ऑपरेशन कब तक चला?''

''क्या पता! तुम दस घंटे बाद बाहर आए। कल की बात है। अब कैसा लग रहा है?'' माधुरी ने प्रश्न किया। मैंने अपने दाहिने अंगूठे से तर्जनी को जोड़कर इशारा किया, जिसका अर्थ था- बढ़िया। तीन-चार मिनट की इस छोटी-सी मुलाकात की स्मृति को मैं अपने जीवन भर संजोकर रखूँगा। यह हम दोनों के पुनर्मिलन जैसा था। कुछ देर बाद आईसीयू में संगीता आई। उसने पूछा- ''कैसे हो पापा?'' मैंने अपनी पलकें झपकाकर कुशल होने का संकेत दिया और एक हाथ उठाकर गाल को छू लिया। मेरे उस स्पर्श में उनके द्वारा किए गए अपूर्व प्रयासों के लिए आभार, शाबासी और न जाने क्या-क्या भाव थे!

''पापा, मैं तीन घंटे तक आपकी सर्जरी में खुद खड़ी रही। बहुत अच्छा ऑपरेशन हुआ है आपका। डॉ. देशपाण्डे और डॉ. चौधरी ने शानदार काम किया।'' संगीता ने बताया।

आपकी सर्जरी के लिए ओटी खाली मिल गयी। इसलिए कल सुबह सात बजे आपको तैयार रहना है। आल दि बेस्ट।''

ऑपरेशन के बाद मुझे इन्टेन्सिव केयर यूनिट में रखा गया। मैं अपने बिस्तर पर चित्त लेटा था, नाक और मूत्र-नली में पाइप लगे थे। एक हाथ से ग्लूकोज दिया जा रहा था तो दूसरे पर रक्तचाप मापने का यंत्र लगा था, जो हर तीस मिनट में खुद चालू होता और कंप्यूटर में डाटा अंकित कर लेता। दिल की धड़कन मापने वाली मशीन के इलेक्ट्रोड सीने पर यहाँ-वहाँ चिपके थे। सिर स्थिर था ही, शरीर के अन्य अंगों के भी हिलने-डुलने की कोई गुंजाइश न थी। मुझे लगातार नींद आ रही थी। बीच-बीच में टूटती, फिर सो जाता। सर्जरी एरिया में असुविधा थी, लेकिन दर्द नहीं था। आधी रात के बाद मेरी नींद उचट गयी, क्योंकि रात की पाली के डॉक्टर और नर्स तेज आवाज में बातें कर रहे थे। बातचीत क्या, ही-ही, खी-खी चल रही थी। तंद्रा की अवस्था में मैं सोना चाहता था, लेकिन उनकी आवाजें मुझे चुभती रहीं। मैं लाचार पड़ा रहा। मुझे यह भी नहीं मालूम था कि कॉल-बेल बिस्तर में ही लगी है, अन्यथा मैं उन्हें बुलाकर शोर मचाने के लिए मना करता। मेरा मुँह रुई से पैक था, इसलिए मैं बोल नहीं पा रहा था। नर्सें मुझे दूर-दूर से आती-जाती दिखतीं, मैं हाथ उठाकर बुलाने का इशारा करता, लेकिन वे मेरी ओर न देखकर सीधे निकल जातीं। ऐसे में मैं उन्हें कैसे बुलाता! घंटों बेचैनी में बीत गए। रात को लगभग दो बजे एक नर्स मेरे पास आयी। मैंने उसे अपनी समस्या बताई। उसने डाक्टर की सलाह से मुझे मॉर्फीन की एक डोज दी। लेकिन उनकी ही-ही, खी-खी के आगे मॉर्फीन ने भी घुटने टेक दिए। वे सुबह होने तक बतियाते रहे। मैं रात भर बेचैन जागता रहा। जब सुबह पौ फटी तो मेरी बायीं ओर लगे पारदर्शी काँच से सूर्य का प्रकाश प्रविष्ट होने लगा। मैंने मन ही मन कहा- गुड मॉर्निंग। मुझे उम्मीद थी कि उन बे-शऊर डॉक्टरों और नर्सों की ड्यूटी का समय खत्म होनेवाला होगा। जब वे सब यहाँ से विदा हो जाएँगे, तब मैं चैन से सो सकूँगा। कुछ देर बाद वैसा ही हुआ, तब मैं सुख की नींद ले सका।

दोपहर को प्लास्टिक सर्जन डॉ. चारुदत्ता मुझे देखने आए, जाँच की और बताया- ''आपकी जाँघ के जिस टुकड़े को चेहरे में ग्राफ्ट किया गया था, वह सक्रिय हो गया है।'' शाम को डॉ देशपाण्डे आए। मुँह की रुई बाहर निकालकर पूछा- ''अंकल, कैसे हैं?'' मैंने इशारे से हाल बताया और हाथ जोड़कर कहा- ''डॉक्टर साहब, मैं इस यातनागृह में अब और नहीं रहना चाहता। मुझे आज ही कमरे में शिफ्ट कर दीजिए, ताकि मैं रात को आराम से सो सकूँ।'' सहृदय डॉक्टर ने मेरी बात मान ली और रात को नौ बजे मुझे रूम में शिफ्ट कर दिया गया।

आईसीयू में रात की बात को छोड़ दिया जाए, तो बारह दिनों के उस अस्पताली प्रवास को भुलाया नहीं जा सकता। डॉक्टरों की लगातार देखरेख, आत्मीयतापूर्ण बातचीत, नर्स और अन्य स्टाफ का अनथक परिश्रम, उत्कृष्ट साफ-सफाई और स्वादिष्ट भोजन व पेय की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। सब काम एकदम समय पर, किसी से कुछ कहने या याद दिलाने की जरूरत नहीं। मुझे वहाँ सम्पूर्ण व्यवस्थित प्रबंधन का व्यावहारिक रूप देखने को मिला। सभी लोग अच्छे थे। नागालैंड से आई बेबी नामक एक नर्स का व्यवहार और सरोकार तो आज भी याद आता है।

आईसीयू से निकलने के बाद पत्नी और दामाद घर लौट गये। संगीता देखरेख के लिए साथ रही। इस बीमारी की पहचान से उपचार तक संगीता ने जिस सक्रियता से मेरी सेवा-सुश्रूषा की, मुझे लगा कि वह मेरी बेटी नहीं, बेटा है।

सर्जरी से निकाले गए गाल के टुकड़ों की जाँच-रिपोर्ट 29 अगस्त को आ गयी। कैंसर का प्रभाव आरंभिक और एक ही स्थान पर केन्द्रित था। इसलिए डॉक्टर ने रेडियोथेरेपी की जरूरत से मुझे मुक्त कर दिया और 1 सितंबर की सुबह अस्पताल से छुट्टी मिलने का संकेत दे दिया। 30 अगस्त की शाम को ही अस्पताल से डिस्चार्ज की तैयारी शुरू हो गयी। पहले हमें 2,75,000 रुपये का पैकेज बताया गया था, और हमने पूरी राशि जमा कर दी थी। जब संगीता बिल काउंटर पर भुगतान करने गयी तो हमारी सर्जरी का कुल बिल बना 2,44,000 रुपये का। आश्चर्यचकित संगीता ने पूछा- ''आप कुछ भूल तो नहीं रहे हैं?''

''नहीं, पेशेंट पर हॉस्पिटल का खर्च इतना ही हुआ है।'' उन्होंने कहा और 31,000 रुपये वापस कर दिए।

जब संगीता ने मुझे यह बताया तो मैं कोकिला बेन धीरूभाई अंबानी अस्पताल की ईमानदारी पर विस्मित-सा हो गया। चिकित्सा-जगत में व्याप्त लूट-खसोट के विपरीत उनका व्यवहार अविश्वसनीय लगा। मैं अपने शहर बिलासपुर में अखिल भारतीय स्तर के एक ख्यातिलब्ध ग्रुप के अस्पताल की कारिस्तानी को याद कर रहा था, जहाँ अधिकतर मरीजों की बीमारी के साथ घिनौना खिलवाड़ किया जाता है। मृत मरीज अपने ठीक होने का संकेत किया, तो उन्होंने कहा- ''बोलकर बताइए।'' जिन्दा बताते हुए वेंटिलेटर पर रखा जाता है, ताकि उसके जीवन की आस लगाए परिवारजनों से मोटी रकम वसूली जा सके। मरीज के

गैरजरूरी महँगे परीक्षण इसलिए करवाए जाते हैं, ताकि अस्पताल की आय बढ़े। इलाज का अनाप-शनाप बिल बढ़ाकर उनकी मजबूरी का नाजायज फायदा उठाया जाता है।

महत्त्वपूर्ण यह है कि हम दोनों विस्मित क्यों हुए? ईमानदारी तो हमारा स्वाभाविक व्यवहार होना चाहिए। यही ईमानदारी किसी संस्थान की ख्याति में वृद्धि करती है। यही ईमानदारी किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारती है। तो फिर यह गुण अब दुर्लभ क्यों होता जा रहा है? चिकित्सा का कार्य व्यापार नहीं, सेवा और सहानुभूति का कार्य है। इस मिशन का तानाबाना मानवीय संवेदनाओं के धागों से बुना हुआ है। इन धागों का टूटना भविष्य के संभावित खतरों की दुखदायी आहट है।

सन् 71 में आनंद फिल्म देखी थी। ऋषिकेश मुखर्जी ने समूचे कथानक को ऐसा चित्रित किया था कि कैंसर जैसी भयावह बीमारी जैसे एक कविता बन गई, जिसने सबको रुलाया और वह अविस्मरणीय बन गयी। तब मुझे मालूम न था कि वह कहानी मेरे जीवन में यथार्थतः घटित होगी। आठ वर्ष के अंतराल में कैंसर के तीन-तीन तीव्र आक्रमण मुझपर हुए। इस गंभीर बीमारी का मैंने किस तरह सामना किया, उसे मेरे डॉक्टर, परिजन और कुछ अंतरंग ही जानते हैं।

❑❑❑

आलेख

पर्यावरण की पुकार! अब और प्लास्टिक नहीं

● जसप्रीत सिंह सेतिया
नई दिल्ली कार्यालय

प्लास्टिक पर्यावरण को, विभिन्न तरीकों से प्रभावित कर, उसका बहुत नुकसान कर रहा है। यह बात निश्चित है कि यदि मानव जाति ने इस समस्या का जल्द हल नहीं निकाला, तो पर्यावरण सर्वनाश की तरफ अपने कदम बहुत तेजी से पसारेगा. इस समस्या का हल हमें एक मिशन के रूप मे करना है, जिसमें जन भागीदारी की बहुत आवश्यकता है. सच माने तो, इस मिशन को एक जन आंदोलन का रूप लेना होगा । मेरा मानना है कि ऐसे मिशन, सिर्फ सरकारी तंत्र के आदेशों से ही सफल नहीं हो सकते, बल्कि जन आंदोलन और जन मानस की जागरूकता भी, इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि समस्या बहुत जटिल रूप ध ारण कर चुकी है। हमारे देश मे प्रति दिन लगभग 26 हजार टन प्लास्टिक का प्रयोग हो रहा है, जो जल थल दोनों को प्रदूषित कर रहा है। न केवल मानव परंतु पशुओं एवं समुंदरी जीव जन्तु भी इस समस्या से प्रभावित हो रहे हैं। पालिथीन बैग खाने से बहुत से मवेशियो कि भी मौत हो रही है, जिससे सारे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है।

इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए, लाल किले के प्राचीर से हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने अपने इस वर्ष के स्वतंत्रता दिवस के संबोधन मे इस समस्या के निवारण के लिए अथक प्रयास करने का आह्वान किया, जोकि एक बहुत सराहनीय कदम है. यह कदम न केवल पर्यावरण का संतुलन बनाने मे मदद करेगा, बल्कि प्लास्टिक के वैकल्पिक वस्तुओं के निर्माण करने से समाज के विभिन वर्गो को रोजगार के नए अवसर प्रदान करने मे मदद्गार होंगे. इस मिशन को पूरा करने में, शुरुआत में हम सबको बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, लेकिन कुछ समय पश्चात हम सब प्लास्टिक के कम से कम प्रयोग कर भी, जीवन सहजता से व्यतीत कर पायेंगे, यह मेरा पूर्ण विश्वास है।

मिशन की शुरुआत प्लास्टिक के थैले की बजाय जूट बैग का इस्तेमाल करके, हम पर्यावरण के संतुलन मे एक छोटा सा योगदान दे सकते हैं। इस आन्दोलन में हर उम्र, वर्ग, जाति के लोगों का जुड़ना बहुत जरूरी हे। युवा पीढ़ी को इस आंदोलन मे अग्रणी एवं निर्णायक भूमिका निभानी होगी, जोकि एक हरे भरे भारत की मजबूत नीव का आधार बनेगी।

(हिन्दी पखवाड़े की 'चित्राधारित रचना' प्रतियोगिता में पुरस्कृत)

❑❑❑

सेमल के आर्त्तनाद से उगी कविता!

• सुरेन्द्रनाथ कपूर
गुरुग्राम, हरियाणा

कभी-कभी जीवन में इस कदर रोमांचक घटनाएं घट जाती हैं ,जो जीवन की धारा ही बदल देती हैं। यह वर्ष 2009 की बात है। मेरी बाल्कनी के सामने सेमल का बड़ा-सा पेड़ था। उसकी शाखाएं जैसे आकाश को छूने को लालायित रहतीं। नतीजतन, हाड़ कँपा देनेवाली सर्दियों में धूप के आने का रास्ता पूर्णतया अवरुद्ध हो जाता था। अपनी सोसाइटी के प्रबंधकों से आग्रह किया कि पेड़ को ऊपर से कटवा दें। और उन्होंने हमारा आग्रह स्वीकार कर लिया। पेड़ की घनी- छतनार टहनियों की छंटाई कर दी गयी, जिससे धूप के लिए हम तक पहुँचने का प्रवेश-द्वार खुल गया। अत्यधिक भावुक और संवेदनशील होने के नाते मेरे अंतर्मन में इसका बहुत गहरा मलाल था। सेमल की कटी हुई टहनियाँ और मुर्झाए पत्ते देखकर मेरा मन अपार पीड़ा से भर उठा।

रात को किसी वक्त आँख खुली तो लगा कोई सिसकियां ले-लेकर मुझे पुकार रहा है। यह सेमल का पेड़ ही था, जो क्षोभ से भरकर मुझे अपनी व्यथा-कथा सुना रहा था। इस अनुभव ने मुझे इतना विचलित कर दिया कि इसकी वेदना से मुक्ति पाने के लिए मैंने उसे लिख दिया। अगले दिन जब लखनऊ में बैंक की हाउस मैग्जीन संकल्प की संपादिका श्रीमती अनिता सचदेव से दूरभाष पर बात की तो उन्होंने सुझाव दिया कि मैं कविता का आभास देती उस रचना को उन्हें सुनाऊं। उन्होंने ध्यानपूर्वक वह रचना सुनी। सुनने के बाद उन्होंने यह कहकर मुझे विस्मित कर दिया कि जो मैंने लिखा है वह करीब 26 पंक्तियों की कविता है। साथ ही उन्होंने उसे पत्रिका में प्रकाशित करने के लिए भेजने का सुझाव दिया। मैंने अपने दामाद श्री बिमल टंडन को जब यह बताया तो उन्होंने अपने लैपटॉप पर टाइप करके वह रचना श्रीमती सचदेवा को भेज दी। (संकल्प) में यह रचना, 'क्या जवाब दूं' शीर्षक से प्रकाशित हुई और मैं एक्सिडेंटल कवि बन गया।

तबसे यह लेखन जारी है और बिना तकनीकी बारीकियां जाने मैं करीब 1600 कविताएं लिख चुका हूं जो कई पत्रिकाओं और अखबारों में प्रकाशित हो चुकी हैं। यह अतीन्द्रिय अनुभव मुझे आज भी चमत्कृत करता है!

आभारी हूं, प्रिय सेमल, अनिता जी, उनके सहयोगी डॉक्टर रामवृक्ष सिंह तथा अपने दामाद का।

रूहों से मुलाकात!

आज ध्रुव गुप्तजी (अवकाश-प्राप्त आईपीएस) के संकलन (हाशिए पर रौशनी)का आलेख (बेजुबान नहीं होते खंडहर), पढ़कर कुछ यादें ताजा हों आईं। ध्रुव जी की मुलाकात तो औरंगजेब की बेटी जेबुन्निसा से बड़े रोमांचक तरीके से हो गई। मुझे भी तीन-चार बार ऐसे ही अनुभव हुए थे। ऐसा बहुत संवेदनशील होने पर होता है। रुहें भी ऐसे लोगों को ढूंढ़ती हैं। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, एक घटना में सेमल के काटे गए वृक्ष ने आधी रात को अपनी नाराजगी का खुलकर इजहार किया और मुझे एक्सिडेंटल कवि बना दिया। दूसरे वाकए में एक किशोर और किशोरी ने दिल्ली में बस में सफर करते समय अपने हत्यारों के दारुण भविष्य के बारे में बताया था। उस प्रकरण ने पूरे देश को हिला दिया था। एक और अनुभव में कुछ देर पहले दिवंगत हुए एक रिश्तेदार ने अपने मरने की खबर देकर बताया था कि उनका अंतिम संस्कार कौन करेगा और वह कहां होगा। दोनों बातें लीक से हटकर थीं, लेकिन वैसे-ही हुईं। एक और घटना तब हुई जब मैं एक बारात में शामिल था।

दूसरी शादी का मामला था। दूसरी शादी करने जा रहे व्यक्ति की मृत पत्नी ने दुख प्रकट करते हुए बताया कि हड़बड़ी में की गई उस शादी के कारण संबंधित व्यक्ति आजीवन दुख उठाएगा। वही हो रहा है।

बार-बार होनेवाले इन अतीन्द्रिय अनुभवों से आतंकित होकर मैंने भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभु, मुझे इन रूहानी मुसीबतों से मुक्ति दो। मेरी प्रार्थना सुन ली गयी और तबसे मुझे ऐसे अनुभव होने बंद हो गए हैं।

यह जातिवाद हमें कहाँ ले जा रहा है!

मैंने अपने दादा श्री गुरदीन लाल कपूर को कभी नहीं देखा। वयस्क हो जाने के बाद मेरी दादी ने बताया कि दादाजी कम उम्र में ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके अनाथ बच्चों, यानी मेरे पिता और उनके अन्य परिजनों का पालन-पोषण दादाजी के एक पड़ोसी ने किया।

उन पड़ोसी सज्जन ने ही मेरे पिताश्री को पाला-पोसा और न केवल मैट्रिक तक पढ़ाया, बल्कि उन दिनों अंग्रेजों द्वारा संचालित स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक में टाइपिस्ट की नौकरी भी लगवा दी। पोस्टिंग मिली दिल्ली में। वहीं उनका विवाह किया।

कालांतर में मेरे पिताश्री मुरादाबाद में एक बड़े कारखाने के जनरल मैनेजर बने, शानदार सिनेमाघर 'राजहंस' को बनाने में योगदान किया। पिताश्री हम भाइयों को 9 और 11 साल की उम्र में मुंबई भी घुमाने ले गए, जहां की मधुर स्मृतियां आज भी जहन में हैं। अपने शहर में उन्होंने एक आधुनिक रेस्टोरेंट खोला। शहर के संभ्रांत लोग उनके साथ चाय पीने आते थे।

साथ ही, उन्होंने अपने संरक्षक को एक दुकान खुलवा दी और उनके आराम से रहने का सम्पूर्ण प्रबंध कर दिया। उन्हें हम ताऊजी कहते थे। ताऊजी और ताईजी से हम बहुत प्यार पाते थे। पिताश्री को पढ़ने का बेहद शौक था। इसलिए दुनिया की कुछ बहुत अच्छी किताबें उनके संकलन में थीं। सच कहें तो मेरी असली पढ़ाई उनकी लाइब्रेरी में ही हुई।

कालांतर में ताऊजी को कैंसर ने जकड़ लिया। उस वक्त मेरी उत्सुकता के प्रत्युत्तर में दादी ने बताया कि हम कपूर हैं जबकि ताऊजी मिश्रा। लेकिन जातिवाद कभी हमारे परिवारों के बीच नहीं आया।

❑❑❑

कविता

तीन कविताएँ

• अतुल कुमार रस्तोगी
प्रधान कार्यालय, लखनऊ

(1)

रणस्थली
अंग-अंग भंग-छिन्न
रेणु-रेणु लाल,
झनन-झन, झनन-झन
शर-ताण्डव-ताल,
रोर-घोर-छोर-छोर
दिग्दश विध्वंस,
अमर-अतल-अम्बर
अनन्ततम स्कम्प,
मारो-मारो-मारो
आदि-अन्त शब्द,
दर्प-दर्प-दर्प-दर्प
दर्प उपलब्ध,
वाण-त्राण-प्राण
शमित देह-देह-गेह,
दृश्य-दृश्य सृष्टिपात
शून्य-शून्य नेह,
टंकार-झंकार
जयति-जयति घोष,
अक्षय-अनल रोम-
रोम-रोम-रोष-कोष।
नारकी की आरती
उतारता अनेह,
तोड़ने वसुन्धरा
जुटा है मेह-मेह।

(2)

हा दैव, कभी करना विचार !
मैं भी दग्ध, प्रतीक्षारत चिर,
साँसो में बैली कुश-पुकार।
शोभा के सारे द्वार छिन्न,
सब पृथक हो गए हैं अभिन्न,
लौटी बारात निकेतन से
शुचि मोती टूटे छिन्न-खिन्न,
शहनाई, दीप सब बुझे-बुझे,
वीणा के ढीले सकल तार।
रचना का फीका हुआ अर्थ,
मोती का जीवन, जलज व्यर्थ,
यह विश्व समूचा पंक-पात्र,
चिर तरणि मनुजता की समर्थ-
असमर्थ, तृषा तन पर लपेट
तिरती सागर की तेज धार।

(3)

वर्षा
निश्चल जल-तल पर छल-छल
वर्षा - नर्तन - कल पल-पल,
मन - मयूर मोहित अनु-जल,
सिहरे पल की माया,
यह पल मेरा तेरे तन से क्यों कर है अलगाया।
श्वासें तन का मंथन करती,
धड़कन करती मन का,
अक्षि मर्म का चुंबन करती
शक्ति - पुंज जीवन का,
बीज रहित सूना आँगन है आज तृप्ति बिन काया ।
कंकण, किंकिंण, नूपुर पहने
सुधि वर्षा की जागी,
कहाँ सोए हो पथिक, बनाओ
मुझे वधू रस-पागी,
वर्षा ने अपने मस्तक पर मेघ-सुहाग सजाया।

❑❑❑

अपने-अपने सुख

• डॉ0 रश्मिशील
लखनऊ

रामेसुर के घर खुशियों का तांता लगा हुआ था। पिछले साल बेटा अनिल इंटर में अव्वल पास हुआ था। उसके पास साइंस होती तो और ऊंचे जाता। पर साइंस की पढ़ाई आजकल कितनी खर्चीली है और रामेसुर का इतना बूता नहीं। एक महीना पहले छोटी बिटिया विन्नी ने बी.ए. पास किया है, पहले दर्जे के साथ। और आज, अभी थोड़ी देर पहले बड़ी बेटी मधु को सरकारी नौकरी मिलने की सूचना आई है। अप्रत्याशित खुशियों के बोझ तले दबे प्रसन्न रामेसुर का मन अब दोपहर बाद दूकान पर जाने का नहीं हो रहा था। उसने चारपाई पर पांव पसार लिए।

पास बैठी पत्नी उसकी मंशा ताड़ गई। पूछा, ''का अब दुकान नहीं जाओगे?''

''नहीं भगवती, अब आज मेरा मन नहीं कर रहा है। आज मैं बच्चों के साथ रहना चाहता हूं। कहां हैं मधु और विन्नी!''

''मैं यह रही बाबू।'' दूसरे कमरे से आते हुए माधुरी ने कहा। ''आपके लिए चाय बना रही थी। लीजिए पकड़िए अपना कप।'' माधुरी ने ट्रे बढ़ाई।

रामेसुर ने ट्रे से एक कप उठा लिया। थोड़े संकोच से पूछा, ''अच्छा यह तो बता मधु, तुझे तनखा कितनी मिलेगी?''

''शुरू में यही कोई बीस हजार रुपये महीना।''

अपने आश्चर्य को दबाते हुए रामेसुर ने कहा, ''बड़ी भागवान हो बेटी, नहीं तो अच्छे-अच्छे नौकरी को तरसते हैं, और मिलती भी है तो हजार दो हजार की। बेटी, तूने वह जो, क्या कहते हैं-पार्ली।''

''पॉलीटेक्नीक''

''हां-हां वही। वैसा विन्नी को भी करा दे।''

''विनीता ने भी आगे पढ़ने से मना कर दिया है। कोई ट्रेनिंग करना चाहती है। उसी सिलसिले में अपनी सहेली से बात करने गई है। बाबू, एक बात सुन लो-मैं अन्नू को खूब पढ़ाऊंगी। भगवान ने चाहा, एक दिन बड़ा अफसर बनेगा।''

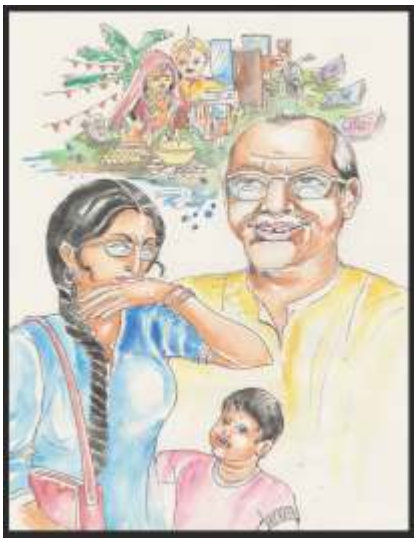

''जरूर बनेगा, बेटी,'' मां ने कहा, ''जिसकी तेरे जैसी बहन हो, वह क्या नहीं बन सकता! अभी तूने ही तो दोनों को पढ़ाया है-ट्यूशन कर-कर के।''

''अम्मा तुम भी बस!'' मधु उठने लगी तो पिता ने हाथ पकड़ लिया। कुछ देर उसके चेहरे की ओर देखते रहे फिर बोले, ''बेटी, यह तेरा बड़प्पन है कि तू घर के बारे में सोचती है। पर मुझे तो तेरे हाथ पीले करके इस घर से विदा करना है।''

मधु विषयांतर करना चाहती थी, तभी विनीता और अनिल आ गए।

अपनी दो साल की नौकरी में मधु ने घर का काया-कल्प कर दिया। कमरों की मरम्मत हुई, रंग-रोगन हुआ, नया फर्नीचर आया, दो कमरे, स्नानघर, शौचालय नए बने। विनीता भी नौकरी पर लग गई। परंतु मधु ने उससे कोई आर्थिक योगदान नहीं मांगा और न ही विन्नी ने इसके लिए अपनी ओर से कुछ कहा।

माधुरी के बॉस उससे बहुत प्रभावित रहते थे। सौम्य, मृदु-भाषी बॉस निस्संतान विधुर हैं। यही कोई चालीस के लपेटे में होंगे। जब कभी माधुरी को देर तक रुकना होता है तो बॉस उसे गाड़ी से घर भिजवा देते हैं। माधुरी जानती है कि वे उसे पसंद करते हैं परंतु कभी कोई अशोभन व्यवहार नहीं, कोई इशारा नहीं। इसी कारण वह बॉस का सम्मान ही नहीं करती है उन पर विश्वास भी करती है। अपनी पारिवारिक समस्याएं उनके सामने रखती है और उनके द्वारा सुझाए गए समाधान पर अमल भी करती है।

''सर, आपसे कुछ बात करना चाहती हूँ।'' माधुरी ने एक दिन बॉस से कहा।

"हां, क्यों नहीं! कहो क्या बात है। तुम कुछ परेशान लग रही हो।" बॉस ने चश्मे के भीतर कैद आंखों को बड़ी कोमलता से मधु के चेहरे पर टिका दिया।

"सर, मेरी छोटी बहन विनीता को आप जानते ही हैं, उसका अपने एक 'कलीग' राजेश से प्रेम चल रहा है। लड़के के परिवारी जन उसके लिए कहीं और लड़की देख रहे हैं।"

"राजेश प्रेम-संबंध की बात अपने घर पर क्यों नहीं बतलाता?" बॉस ने पूछा।

"वह जानता है कि उसके पिता दहेज के लोभी हैं और मेरे पिता दहेज के सख्त खिलाफ। ऐसे में प्रेम-विवाह की बात कैसे सोची जा सकती है!"

"आपके पिता दहेज के खिलाफ हैं यह बात सामने कैसे आई!"

"मेरे मामा जी मेरे रिश्ते के लिए एक सज्जन को घर लाए। उनका बेटा इंजीनियर है। आप पूछ सकते हैं कि यह उल्टी गंगा कैसे बह रही है! पर इसका कारण यह है कि हमारे समाज में शिक्षित, सुसंस्कृत और कमाऊ लड़कियां विरल हैं। उन्होंने दहेज की कोई बात नहीं की, वे सिर्फ मुझे देखना चाहते थे। पिताजी ने उनसे कह दिया कि बेटी दहेज के सख्त खिलाफ है। तब उन्होंने स्पष्ट कहा कि उन्हें दहेज नहीं चाहिए, सिर्फ सुंदर-सुशील, सुशिक्षित वधू चाहिए। बाबू ने अड़ते हुए कहा कि वे जाकर घर पर सलाह-मशविरा कर लें कि दहेज में एक कौड़ी नहीं मिलने वाली है। लड़के वाले रुष्ट होकर चले गए। ऐसी ही उल्टी गंगा एक बार और बही। उसका भी यही परिणाम हुआ। अब विनीता के रास्ते में कोई रोड़ा न अटके।" माधुरी सांस लेने को थमी।

"देखो माधुरी, बुरा न मानना-मैं समझता हूँ कि तुम्हारे पिता तुम्हारी शादी करना ही नहीं चाहते हैं। इसका कारण है तुम्हारे घर की तुम्हारे ऊपर पूर्ण आर्थिक निर्भरता। तुमने बताया था कि उनकी दूकान भी अब ठप-सी है। इसी तर्क के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि विनीता की शादी में वे कोई रोड़ा नहीं अटकाएंगे। बल्कि मैं यहां तक कहूंगा कि वे यह विचार तक नहीं करेंगे कि बड़ी लड़की अनब्याही है तो छोटी का विवाह करें या न करें। खैर, विनीता की शादी की बात तुम घर में चलाओ।"

विनीता की शादी के लिए रामेसुर राजी हो गए। इस बार उन्होंने दहेज देने के संबंध में कोई बात नहीं उठाई। मामा और अम्मा ने कड़ा विरोध किया कि बड़ी लड़की शादी को बैठी है और छोटी का ब्याह रचाया जा रहा है। अभी कौन-सी उमर निकली जा रही है जो विन्नी की शादी तय की जा रही है। रामेसुर ने यही कहकर सबको चुप करा दिया कि माधुरी के लिए लड़कों की कोई कमी नहीं है। खुद लड़के-वाले हाथ मांगने आते हैं।

विनीता के ससुराल वाले आधुनिक विचारों के थे। उन्हें प्रेम-विवाह में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई दिया। बहरहाल, खूब धूम-धाम से शादी हो गई। माधुरी ने अपनी जमा पूंजी तो लगा ही दी, दफ्तर से कर्ज भी लिया। बॉस ने आर्थिक सहयोग देने की पेशकश की परंतु माधुरी ने नम्रता से मना कर दिया। हां, उनकी गाड़ी अवश्य तीन दिन तक लगी रही। उसी से विनीता अपनी ससुराल गई।

विनीता के ससुराल चले जाने के बाद मां भगवती उदास रहने लगीं। दरअसल उन्हें बड़ी बेटी की चिंता खाए जा रही थी। उनतीस की होने को आई, रामेसुर को तो जैसे कोई चिंता ही नहीं। रिश्तों के लिए कोई प्रयास ही नहीं करते। कितने अच्छे-अच्छे रिश्ते आए, सब लौटा दिए। कहीं लड़कियों के भी रिश्ते आते हैं, ले जाने पड़ते हैं। उल्टी गंगा बही, उसमें भी रामेसुर नहा नहीं पाए। एक दिन तो भगवती ने झल्लाकर अपने भाई से कह दिया, "भैया, लगता है तुम्हारे जीजा अब बेटी की कमाई ही खाते रहेंगे। मुझे भी नरक में घसीट रहे हैं।"

माधुरी को भी बहन और पिता के रवैये से कष्ट हुआ। कई दिन विचलित रही। इस मनोभार ने उसे उदास बना दिया। बॉस कई दिन से माधुरी को उदास देख रहे थे। अंततः एक दिन पूछ बैठे, "मिस माधुरी आप उदास रहती हैं, क्या परिवार में कोई नई समस्या खड़ी हो गई है! अपना मन खोलो तो हल्की हो जाओगी, तभी कोई मार्ग सूझेगा।"

भावनात्मक सहारा पाकर माधुरी ने बताया कि उसे लेकर मां इतनी चिंतित रहती हैं कि उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरता जा रहा है। वे पिता के रवैये से क्षुब्ध हैं। अनिल ने प्रथम श्रेणी से बी.ए. पास कर लिया है परंतु किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने के बजाय मस्ती मारता रहता है। पैसे भी बहुत मांगने लगा है। पता नहीं कहां खर्च करता है!

कुछ देर सन्नाटा व्याप्त रहा। बॉस समझ गए कि माधुरी अब और कुछ नहीं कह पाएगी। कोमल कंठ से बोले, "जिन परिवारों को आर्थिक रूप से लड़कियां चलाती हैं वहां अक्सर ऐसी ही अप्रिय स्थितियां

पैदा हो जाती हैं। ऐसे में लड़कियों को स्वयं प्रयत्न करके स्थिति से उबरना होता है और उबरना भी चाहिए।''

बॉस ने समस्या और उसके समाधान का सामान्यीकरण कर दिया, जिससे माधुरी को बुरा न लगे। उन्होंने किसी प्रकार की सहायता देने का प्रच्छन्न प्रस्ताव भी नहीं रखा था, क्योंकि जानते थे कि माधुरी कदाचित सहायता लेना पसंद न करे। परंतु, जैसा माधुरी ने समझा, 'उबरने' से उनका तात्पर्य 'विद्रोह' करना था। विद्रोह वह किससे करे-बाबू से, अम्मा से या समाज से? समाज ने तो उसके ऊपर कोई बंधन नहीं डाला है। बड़ी से पहले छोटी का विवाह चुपचाप स्वीकार कर लिया।

विचारों के आलोड़न से माधुरी के सिर में दर्द होने लगा। वह अन्यमनस्क हो उठी। उड़ती दृष्टि से घड़ी देखी। तीन बजे थे।

बॉस उसकी स्थिति भांप गए। बोले, ''मिस माधुरी, मुझे लगता है आपका मन ठीक नहीं है। मेरी राय से आप घर जाएं और आराम करें।''

माधुरी यही चाहती थी। उसने कृतज्ञ-दृष्टि से बॉस की ओर देखा, फिर तत्काल ही आंखें नीचे झुका लीं-इस भय से कहीं सामने वाला उस दृष्टि का कोई दूसरा अर्थ न निकाल ले। एक पल को उसने सोचा कि सामने बैठा व्यक्ति, जिससे उसका अंतरंग संबंध तक नहीं है उसके मनोभावों को कितना समझता है और भरपूर नैतिक बल देता है! और एक उसके जन्मदाता हैं!

घर में घुसते ही माधुरी को लगा कि कुछ लोग ड्राइंगरूम में बैठे हैं। दरवाजे पर परदा खिंचा था। वह गैलरी से होते हुए अपने कमरे में चली गई। कुछ समय तक वह चुपचाप लेटे रहना चाहती थी-एकदम विचार-शून्य होकर।

माधुरी का कमरा ड्राइंगरूम से लगा हुआ था। वहां से आवाजें आ रहीं थीं। थोड़ा कान धरने पर समझ में आया कि बातचीत शादी के बारे में हो रही है। उसकी उत्सुकता जागी तो सांस रोककर सुनने लगी।

''देखिए, लड़का अभी नौकरी नहीं कर रहा है, शादी कैसे कर दें?'' बाबू का स्वर था।

''आप चिंता नहीं कीजिए,'' एक अपरिचित स्वर था, ''नौकरी हम दिलाएंगे, हमारे हाथ में है। लड़की हमारी सुंदर है, ग्रेजुएट है, बस एक पैर में थोड़ी लहक है। आप चाहें तो देख सकते हैं।''

''वह तो बाद की बात है। पहले यह बताइए, दहेज कितना देंगे?'' अपने बाबू की यह अप्रत्याशित वाणी सुनकर माधुरी जैसे आसमान से गिर पड़ी।

''हमने तो सुना है आप दहेज-विरोधी हैं। खैर, आजकल अच्छी नौकरी के लिए लाखों रुपए खर्च करने पड़ते हैं। फिर भी लड़की के भविष्य को देखते हुए हम पांच लाख कैश देने को तैयार हैं।''

''पांच लाख।'' रामेसुर के स्वर में अविश्वास की गंध थी। ''ठीक है, बात पक्की समझो।''

माधुरी ने अपना सिर तकिए में दे दिया।

दो ही महीने के भीतर अनिल की शादी हो गई। उसके एक महीने बाद लखनऊ में नौकरी लग गई। वह अपनी पत्नी को लेकर चला गया और ससुराल में रहने लगा। पूरा समाज रामेसुर पर थूक रहा था कि दहेज के लालच में उसने बेटे के गले में लंगड़ी लड़की बांध दी और अंततः बेटा भी उसे छोड़कर चला गया।

जिस दिन अनिल लखनऊ जा रहा था, मामा यहीं थे। बेटा-बहू के जाने के बाद घर में सन्नाटा छा गया। मामा माधुरी को लेकर छत के एकांत में पहुंचे। दोनों मुंडेर पर बैठ गए।

बात मामा ने शुरू की- ''बिटिया, इस घर में क्या हो रहा है! दुनिया भर का कलजुग इसी घर में आकर बैठ गया है! जीजा आखिर चाहते क्या हैं ?''

माधुरी ने उनका हाथ थाम लिया। बोली, ''मामा, आप क्यों व्यथित होते हैं! आप समझते हैं कि मैं दुःखी हूँ ?''

''नहीं, कतई नहीं। देवियों को कहीं भला दुःख होता है! अरे तू मानसी होती तो तुझे तकलीफ होती। जीजा ने छोटी की शादी कर दी, वह ससुराल चली गई। अनिल की बोली लगा दी। खरीदने वाले ने उसे अपने पास बुला लिया, सदा सर्वदा के लिए। अब जीजा को कोई सहारा तो चाहिए। और वह है तू, मेरी मुन्नी तू। लानत है ऐसे...।''

''नहीं मामा, मेरे बाबू के लिए कुछ मत कहना। उनको मैं बहुत प्यार करती हूँ, मामा। फिर उनका दोष भी क्या है! मेरे भाग्य में जो लिखा है, वह मुझे मिल रहा है।''

"मधु, दुःख तो यही है कि अपना भाग्य तुमने स्वयं अपने हाथों लिखा है। पर मेरी एक बात गांठ बांध ले- हर लड़की को एक सहारे की जरूरत होती है। मां-बाप, आज हैं, कल नहीं रहेंगे। तुम्हारी नज़र में कोई लड़का हो तो बताओ, मैं स्वयं उससे बात करूंगा। वह जो मांगेगा मैं दूंगा। बेच दूंगा अपनी पचास बीघा जमीन।"

मामा भावुक हो उठे। माधुरी जानती थी कि और बैठे रहे तो वे रोने लगेंगे। उठकर खड़ी हो गई और उनका हाथ पकड़कर कहा, "मामा चलो, अम्मा की दवाई का समय हो गया है। हां, वादा करती हूँ कि जिस दिन मेरी तलाश पूरी हो जाएगी, आपको लड़के से जरूर मिलाऊंगी। जैसे ही मेरा संदेश मिले आ जाना।"

मामा की ममता उमड़ कर कंठ तक आ गई। भांजी को गले से लगाया तो संतोष के अश्रु चू पड़े।

घर में कुल तीन प्राणी रह गए थे। भगवती घर में अकेली पड़ी रहतीं। रामेसुर की दूकान लगभग बंद हो चुकी थी। उसके हाथ में पैसा आ गया तो निठल्ले उसे घेरे रहते। कई ऐब लग गए, पर घर में किसी को भनक नहीं पड़ी। माधुरी दिन भर दफ्तर में रहती। एक काम वाली बाई रख ली थी, जो साफ-सफाई करती, चाय-नाश्ता बनाती और भगवती की देखरेख करती। तीनों लोग रात्रि में मिल पाते। मिलते क्या, टी.वी. के सामने बैठे रहते।

खाना खाने के बाद माधुरी अपने कमरे में जा बैठती। उसकी रुचि धर्म और दर्शन में बढ़ी तो ढेर सारी किताबें आ गईं। उन्हीं में खोए-खोए कब नींद आ जाती, पता ही नहीं चलता। सुबह नाश्ते पर बातें होतीं-कभी अनिल की, कभी विनीता की। माधुरी की भला क्या बातें होतीं! वह तो साथ ही है और साथ में है तो उसकी किसी को चिंता नहीं होती। उसकी शादी की बात तो भूले से भी नहीं उठती।

एक दिन माधुरी निश्चयात्मक मन लिए घर से निकली। दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी। अपने काम निपटाकर वह तीन बजे दफ्तर पहुंची। कुछ समय बाद बॉस के कमरे में गई।

माधुरी को देखते ही बॉस बोले "अरे, तुम तो छुट्टी पर थीं!"

"क्या छुट्टी के दिन आपसे नहीं मिल सकती!" माधुरी की आवाज वायु की तरह हल्की थी।

"क्यों नहीं! दफ्तर के क्या, मेरे घर के दरवाजे भी आपके लिए सदैव खुले हैं। मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूं तो मुझे खुशी होगी।"

"इस समय मैं आपके पास एक काम से ही आई हूँ।"

"हां, हां, कहो, मुझे खुशी होगी।"

"आज दफ्तर बंद होने के बाद आपको मेरे साथ चलना है।"

"अवश्य चलूंगा।"

माधुरी ने मृदु-मुस्कान से कहा, "थैंक यू, सर।" शाम को छह बजे एक गाड़ी रामेसुर के घर के सामने रुकी। उसमें से तीन प्राणी बाहर निकले और घर के अंदर दाखिल हो गए।

ड्राइंग रूम के दरवाजे पर मामा खड़े थे। माधुरी ने उन्हें बुलवा लिया था। ड्राइंगरूम में बाबू बैठे थे। कदाचित् मामा ने उनकी उपस्थिति सुनिश्चित की थी।

माधुरी ने पिता की ओर उन्मुख होकर परिचय दिया, "बाबू, आप हैं मेरे बॉस श्री।"

"बेटी, क्या मैं इन्हें जानता नहीं! विन्नी की शादी में आए थे। फिर अन्नू के ब्याह में शामिल हुए। यह बताओ यह छोटा-सा बालक कौन है ?" माधुरी का हाथ पकड़े खड़े बालक की ओर रामेसुर ने देखा।

बालक ने माधुरी की ओर देखा तो उसने आंखें झपकाईं। किसी पूर्व निश्चित संकेत की मौन स्वीकृति पाकर बालक बोला, "नाना जी, मैं छोटा नहीं, तीन साल का हूँ। मेरा नाम प्रकाश है।"

"अच्छा! अच्छा!! बड़ा तेज बच्चा है। मधु यह तो बता यह कौन है और तू इसे यहां क्यों लाई है?" रामेसुर को एक अनाम चिंता घेरे थी।

सहज स्वर में माधुरी ने कहा, "बाबू, आपको नाना कह रहा है तो मेरा बेटा ही हुआ न!"

"तेरा बेटा!" रामेसुर जैसे आसमान से गिरे। चीख कर बोले, "ओ, कुल-कलंकिनी तेरा बेटा कहां से आया? और है भी तो यहां क्यों लाई है इस व्यभिचार की औलाद को?"

"बाबू, ठीक कहा आपने। यह व्यभिचार की ही औलाद है। अगर इसे आप यहां नहीं रखना चाहते तो मुझे भी इस घर से धक्का देना होगा।"

"हां, तुझे भी धक्का दूंगा। तू क्या समझती है, मैं तेरे टुकड़ों पर

पलता हूं तो ऐसे अनाचार पर कुछ बोलूंगा नहीं?'' रामेसुर का पारा सातवें आसमान पर था।

मामा जी ने वातावरण को हल्का करने का प्रयत्न किया, ''जीजा जी, आप शांत रहिए'', मधु की पूरी बात तो सुनिए।

रामेसुर माधुरी की ओर आग्नेय दृष्टि से देखने लगा। मधु ने उनकी उपेक्षा करते हुए मामा से कहा, ''मामा जी, मैंने आपसे वादा किया था कि एक दिन आपको 'लड़के' से मिलवाऊंगी। यह प्रकाश ही वह लड़का है। इसे मैंने अनाथालय से गोद लिया है। कुंवारी लड़की को बच्चा तभी गोद दिया जाता है जब कोई गोदनामे की गारंटी भरे। मेरे बॉस ने यह गारंटी दी है। आपने एक दिन कहा था कि हर लड़की को एक सहारे की जरूरत होती है। बाबू ने भी ऐसा ही कहा था। आज वह सहारा मैंने प्रकाश के रूप में तलाश कर लिया है। रही बात व्यभिचार की संतान की, तो अनाथालयों में अधिकांश बच्चे वे ही होते हैं जो अवैध संबंधों से उत्पन्न होते हैं। पर अब यह बच्चा अवैध नहीं है, विधिपूर्वक मेरा है।''

पिता की ओर देखते हुए मधु ने कहा, ''बाबू, यह आपकी ही छत्रछाया में पलेगा। आपके पास यह भी रहेगा और मैं भी। मैंने बचपन में कहा था कि सदैव आपकी सेवा करूंगी। वही बात आज भी कह रही हूं। मुझे इसी में सुख है।''

''मुझे क्षमा करना बेटी, पता नहीं मैंने क्या-क्या कह डाला! प्रकाश, मेरे पास आ, अपने नाना के पास आ।'' इतना कहकर रामेसुर ने दोनों बाहें फैला दीं।

नई माँ ने प्रकाश का हाथ छोड़ दिया। प्रकाश दौड़कर नाना की गोद में समा गया।

माधुरी ने बॉस की ओर मुड़कर कहा, ''सर, आपका बहुत बहुत धन्यवाद।''

बॉस कुछ बोले नहीं। एक बार प्रकाश को देखा, फिर माधुरी को। फिर हल्के से माधुरी के कंधे का स्पर्श किया और तेजी से मुड़कर बाहर की ओर चल दिए। कृतज्ञ-दृष्टि से माधुरी उन्हें जाता हुआ देखती रही।

❑❑❑

कविता

माँ मुझको तो अब उड़ना है

● भावेश कुमार
जयपुर शाखा कार्यालय

माँ मुझको तो अब उड़ना है..
तुझे तो न चलने दिया
जिम्मेदारी की बेड़ियों ने ।
तेरे पैरों को बांध दिया
जमाने के कुछ भेड़ियों ने
पर तेरी इन आँखों में
छुपे हुए सपनों को
माँ मुझे पूरा करना है
माँ मुझको तो अब उड़ना है..
कई रातें गुजारीं तूने जाग कर
ताकि मुझे आ जाए चैन की नींद
खिलाई रोटियाँ मुझे पेट भर
खुद भूखी रह कर रात-दिन
माँ, तेरे अनकहे, अधूरे सपनों को
मुझे चाँद-सितारों से अब भरना है
माँ मुझको तो अब उड़ना है...
उड़कर पहुँचूंगी वहाँ जब
तुझे भी संग लेकर जाऊँगी
फिर देखना-तेरे लिए वहाँ
एक नया आशियाँ बनाऊँगी
लोग गर्व से कहेंगे तुझे माँ मेरी
और मैं हूं बेटी तेरी- ऐसा सुनना है
माँ मुझको तो अब उड़ना है....
इस बेटी की उस माँ के लिये
सात समंदर पार की आस है
सतरंगा होगा अब उसका संसार
इसका उसे पूरा विश्वास है
जिस-जिस ने तेरा उपहास किया
उन सब से अब यह कहना है
माँ मुझको तो अब उड़ना है...
माँ मुझको तो अब उड़ना है..

(हिन्दी पखवाड़े की 'चित्राधारित रचना' प्रतियोगिता में पुरस्कृत)

❑❑❑

मेरी परमीशन है

● डॉ. विद्या श्रीवास्तव
ग्वालियर

सुखद सपने देखना और उन सपनों को पूर्ण करने की इच्छा हर व्यक्ति में होती है। दीप्ति भी उससे अछूती नहीं थी। उसका जन्म एक अत्यन्त साधारण परिवार में हुआ था। माँ और पिता के संस्कारों का उस पर भरपूर असर हुआ था। वह कभी ऐसा कोई कार्य नहीं करती, जिससे घर की मान-मर्यादा और सम्मान को किंचित ठेस पहुंचे।

स्वयं की मेहनत और प्रतिभा के बल पर दीप्ति ने प्रत्येक क्लास में प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी। आज उसका एम.ए. फायनल हिन्दी का रिजल्ट आने वाला था। काफी देर तक प्रतीक्षा के बाद अखबार वाला उसके घर के सामने से निकला तो उसने अखबार वाले से कहा - ''काका, आज का अखबार दिखलाना।''

अखबार वाले रामदयाल काका पिछले 15 वर्षों से उसके मोहल्ले में अखबार बांट रहे थे। वे तुरन्त पास आकर बोले- ''बिटिया, क्या बात है? आज कुछ खास खबर आने वाली है जो तुम आज का अखबार देखना चाहती हो?''

अखबार वाले काका की बात सुनकर दीप्ति कह उठी- ''हाँ काका, आज आपकी बिटिया का रिजल्ट आ रहा है।''

-''इसका मतलब, आज हमको मिठाई खाने को मिलेगी।'' - हंसते हुए रामदयाल काका ने अखबार दीप्ति के हाथ में थमा दिया। दीप्ति ने जल्दी से अखबार के पृष्ठ पलटे- तीसरे पेज पर ही एम.ए. फायनल हिन्दी का रिजल्ट छपा था। दीप्ति ने जल्दी से अपना रिजल्ट देखना शुरू किया- वह प्रथम श्रेणी से एम.ए. पास हो गई थी। वह प्रसन्न होकर बोली- ''काका, आपकी दीप्ति बिटिया प्रथम श्रेणी से पास हुई है। शाम को मिठाई खाने जरूर आइएगा।''

रामदयाल काका ने दीप्ति के सर पर हाथ रखा और उसे अपना आशीर्वाद दिया- ''बिटिया रानी, तेरे पिता गोविन्द मेरे परम-मित्रों में थे। अब भले ही वे नहीं हैं पर जहाँ कहीं भी होंगे- तेरी सफलता से खुश हो रहे होंगे।''- ऐसा कहते हुए रामदयाल काका की आँखों में आँसू आ गए, लेकिन उन्होंने कंधे पर रखे अपने छोटे-से तौलिये से आँसू पोंछे और आगे के घरों में अखबार बांटने चल दिए।

दीप्ति की माँ घर में ही थोड़ी-बहुत सिलाई कर लेती थीं। उनके इस काम में कभी-कभार दीप्ति भी हाथ बंटाने लगी थी। पर हर बार दीप्ति की माँ विनीता ही उसे रोक देतीं- ''बिटिया, तू अपना समय खराब न कर, जाकर पढ़ाई कर।''

तब दीप्ति कह उठती- ''माँ, तुम तो यही चाहती हो कि तुम्हारी बिटिया चौबीस घंटे पढ़ने के लिए बैठी रहे। और भी तो ढेरों काम हैं- मुझे आपके कामों में भी सहयोग करना चाहिए। आप मेरे लिए कितनी मेहनत करती हैं- लगातार सिलाई करने से आपकी आँखें भी कमजोर हो गई हैं। चश्मा भी आँखों पर चढ़ गया है।''

दीप्ति की बात सुनकर विनीता मुस्कुराने लगती- ''बिटिया क्या करूँ! अब तो सब कुछ तेरे लिए करना चाहती हूँ। तू पढ़-लिखकर अफसर बन जा, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।''

आज अचानक से पोस्टमैन ने उसे रजिस्टर्ड लिफाफा लाकर दिया। दीप्ति चकित थी- कहाँ से पत्र आ गया? उसने जल्दी-जल्दी लिफाफा खोला- पढ़कर देखा तो वह पी.एस.सी. परीक्षा में डी.एस.पी. पद के लिए चयनित हो गई थी। पत्र पढ़ते-पढ़ते वह खुशी से रोने लगी।

दीप्ति की माँ विनीता ने बेटी को रोते देखा तो वे भी कुछ पल को घबरा गईं। बोलीं- ''बिटिया क्या बात है? जो तू रो रही है- ऐसी क्या बात हो गयी है? अब जल्दी से बता, मुझे तो घबराहट हो रही है।''

दीप्ति माँ के गले लग गई। थोड़ा संयत होने के बाद बोली- ''माँ, मैं डी.एस.पी. पद के लिए सिलेक्ट हो गई हूँ। आज से एक सप्ताह बाद मेरी पोस्टिंग हो जाएगी, फिर तुरंत ट्रेनिंग के लिए भेजा जाएगा।''

-''अरे, तो इसमें रोने की क्या बात है! मैं तो डर ही गई थी। मेरी तो भगवान ने सुन ली। मेरी बिटिया अफसर बन गई। यही तो मैं चाहती थी। मैं अभी गिर्राज जी के मंदिर में प्रसाद चढ़ाकर आती हूँ।'' -माँ तेजी से बच्चों की तरह घर से निकल गईं।

डी.एस.पी. की ट्रेनिंग के बाद दीप्ति की पोस्टिंग भोपाल में हो गयी। उसे जल्दी ही सरकारी क्वार्टर भी मिल गया। दीप्ति ने ग्वालियर आकर माँ से कहा- ''माँ, अब आपको यहाँ रहने की कोई जरूरत नहीं, तुम मेरे साथ भोपाल चलकर रहोगी।''

विनीता बोली- ''बिटिया रानी, तू भोपाल में अच्छी तरह नौकरी करने लगे तब मैं तेरे साथ चलूंगी। तब तक मुझे यहाँ ग्वालियर रहने दो।'' विनीता की जिद्द के आगे दीप्ति की एक न चली। छह महीने के बाद दीप्ति अपनी माँ विनीता को भोपाल ले आयी।

विनीता ने दीप्ति की नौकरी लगने के साथ ही चार-छह स्थानों पर उसके विवाह की बात चला रखी थी। उनमें से आज इन्दौर से एक लड़का विनोद और उसके माता-पिता दीप्ति को देखने आने वाले थे।

विनीता ने ड्राइंग-रूम को अपने हिसाब से सजा रखा था। मेहमानों के लिए अपनी पसंद के कुछ खास व्यंजन भी बनाए थे।

ऑफिस जाने की तैयारी कर रही दीप्ति बोली- ''माँ, आप तो व्यर्थ में जिद्द कर रही हो। अभी मुझे शादी नहीं करनी। चार साल नौकरी कर लेने दो। आपकी सेवा भी करने दो। तब कहीं शादी की सोचना।''

-''यही न, कि तुझे और वक्त चाहिए?'' विनीता ने दीप्ति से कहा।

दीप्ति बोल उठी- ''माँ, आपको पता नहीं इतनी जल्दी क्यों है! जैसे मैं आप पर कोई बोझ जैसी हूँ।''

तभी दीप्ति के क्वार्टर के सामने एक ऑटो रुका। उसमें से तीन लोग उतरे और उन्होंने सामने नेम प्लेट पढ़ते हुए कदम बढ़ाए। ऑटो क्वार्टर के एकदम सामने रुका था। इसलिए वे लोग आसानी से क्वार्टर तक आ गए।

उन्होंने कॉल-बेल बजाई तो दरवाजा दीप्ति ने ही खोला। सामने देखा तो सांवले रंग का एक नौजवान और उसके साथ एक अधेड़ दम्पति खड़े थे। उन्हें देखकर दीप्ति ने अनुमान लगाया- लड़के के साथ उसके माता-पिता आए हैं। उनमें से बुजुर्ग व्यक्ति जो विनोद के पिता सुरेन्द्र कुमार थे, बोल उठे- ''बिटिया, क्या विनीता सिंह यहाँ रहती हैं? उन्होंने ही हमें बुलाया है।''

''आइए-आइए, विनीता सिंह यहाँ ही रहती है, मैं उनकी बेटी दीप्ति सिंह हूँ।'' दीप्ति ने झट से जवाब दिया। वे लोग दीप्ति की ड्रेस से समझ ही गए थे कि वे सही जगह आ गए।

वे तीनों आगंतुक भीतर ड्रॉइंग-रूम में आ गए। दीप्ति की माँ विनीता भी तब तक भीतर से बाहर ड्राइंग-रूम में आ चुकी थीं। जब सब लोग बैठ गए, तब चपरासी चार-पाँच गिलास पानी लेकर आ गया। विनीता ने मेहमानों का स्वागत करते हुए पूछा- ''आप लोगों को यहाँ आने में कोई परेशानी तो नहीं हुई?''

सुरेन्द्र कुमार हँसते हुए बोले- ''अरे, परेशानी भला क्यों होने लगी!आपकी बिटिया को तो सब लोग जानते हैं। ऑटो वाला सीधा हमें आपके क्वार्टर तक छोड़ कर गया है।''

सुरेन्द्र कुमार ने अपने बेटे का परिचय कराते हुए कहा- ''यह मेरा दूसरे नम्बर का पुत्र है- विनोद, जो इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर है। इसकी पोस्टिंग फिलहाल इन्दौर में है। ये मेरी धर्मपत्नी हैं- राजरानी।'' तब तक दीप्ति तैयार होकर ड्राइंग-रूम में आ चुकी थी। उसे अपने ऑफिस के लिए भी निकलना था। उसने ऑफिस खबर कर दी थी कि वह कुछ देर से पहुँच जाएगी।

मेहमानों के सामने चपरासी ढेर-सारा नाश्ता सजा कर रख गया। चाय भी आ गई थी। दीप्ति ने ही सबसे नाश्ता लेने के का अनुरोध किया।

चाय-नाश्ते के बाद इधर-उधर की कुछ बातें होती रहीं। अचानक विनोद ने अपने पिता को एकांत में आने के लिए कहा- ''पापा, जरा दो मिनट के लिए बाहर तक चलो। अभी लौट कर आते हैं'' ऐसा कहते हुए विनोद अपने पिता सुरेन्द्र कुमार को क्वार्टर से बाहर ले आया। वह पिता से बोला- ''पापा, दीप्ति की माँ से तो पूछ लो, ये लोग शादी में क्या-क्या दे रहे हैं? मुझे तो सबसे पहले एक

आल्टो कार जरूर चाहिए।''

सुरेन्द कुमार ने विनोद को समझाते हुए कहा- ''बेटा पता है। हर जगह तेरी इस कार की मांग के कारण शादी रुक जाती है। तुझे मालूम है दीप्ति विनीता सिंह की एकलौती पुत्री है। सब कुछ उसे मिलेगा। सुन्दर सुशील लड़की है। पुलिस अफसर है। उसका कितना नाम और शान है! कमाने वाली बीवी मिल रही है।''

विनोद की आँखों के समक्ष लालच का पर्दा पड़ा था। वह तुनककर बोला- ''नहीं पापा, जब तक आल्टो कार नहीं, तब तक शादी नहीं। आप तो इन लोगों से साफ-साफ कह दो। आपको कहने से डर क्यों लग रहा है?''

विनोद और उसके पिता पुनः ड्रॉइंग-रूम में आ चुके थे। विनीता सिंह बोलीं- ''सुरेन्द्र कुमार जी, आपने हमारी बिटिया देख ली। आपके बेटे ने भी बिटिया को देख लिया है। अब आप लोगों का जैसा विचार हो हमें सोच-समझकर बतला दीजिएगा। अभी कुछ न बता सकें तो बाद में फोन से बता दें।'' विनीता सिंह की बात सुनकर सुरेन्द्र कुमार बोल उठे- ''देखिए विनीता जी, आप बुरा न मानें, आजकल तो बहुत कुछ एडवांस हो चुका है।''

-''हाँ-हाँ बोलिए'' विनीता ने कहा।

''बात यह है कि मेरा बेटा इंजीनियर है। अब उसके स्टेटस के हिसाब से शादी अच्छी होना चाहिए।''

विनीता सिंह कह उठीं- ''देखिए सुरेन्द्र कुमार जी, शादी तो हम लोग अच्छी ही करेंगे, आप जानते हैं हमारे तो एक ही बिटिया है।''

-''वह तो अच्छी बात है। पर मेरा बेटा चाह रहा था कि सगाई के समय उसे एक आल्टो कार जरूर दें।''

विनीता और दीप्ति ने सुरेन्द्र कुमार की बात सुनी। उन्हें गुस्सा तो काफी आया। वे चाहतीं तो मेहमानों को धक्के दिलवाकर बाहर निकाल सकती थीं, पर अतिथि देवो भव होता है, यह सोचकर रह गईं। विनीता सिंह एकदम संयत होकर बोलीं- ''सुरेन्द्र कुमार जी, हम लोगों को भी थोड़ा सोचने का मौका दीजिए।''

-''हाँ-हाँ, क्यों नहीं। आप अच्छी तरह से सोच लें, आजकल तो मोबाइल का युग है। मोबाइल से हमारी-आपकी बातचीत हो जाएगी। अब हम लोग चलते हैं।''

सुरेन्द्र कुमार अपने लाड़ले और पत्नी के साथ वापिस इन्दौर लौट आए थे। उनके जाते ही दीप्ति माँ से बोली- ''माँ, देख लिया आपने। कितने लालची भेड़िए इस संसार में मौजूद हैं। सगाई में आल्टो कार खरीद सकती हूँ। पर ऐसे लालची से मुझे शादी नहीं करनी।''

विनीता सिंह अपनी बेटी दीप्ति का स्वभाव जानती थीं। वे बोल उठीं- ''बिटिया, मुझे नहीं मालूम था इन लोगों की नीयत ऐसी होगी। वरना इन लोगों को कभी यहाँ नहीं बुलाती।''

दीप्ति पुलिस-मैस में बैठी नाश्ता कर रही थी, तभी उसके पास डी.एस.पी. आए और बोले- ''क्या बात है दीप्ति जी! आज अकेले-अकेले ही नाश्ता हो रहा है? मुझे कम्पनी देने के लिए नहीं कहेंगी?''

दीप्ति, राघवेन्द्र की बात सुनकर थोड़ा झेंप गई। वह बोली- ''क्या करूं सर, आज दिमाग कुछ यों ही परेशान था, मम्मी कह रहीं थीं- नाश्ता करके जाना, पर यों ही बगैर नाश्ता किए आ गई। आइए सर। आप भी आ जाइए कम्पनी देने।''

राघवेन्द्र भी दीप्ति के साथ बैठकर नाश्ता करने लगे। अचानक राघवेन्द्र बोले- ''दीप्ति जी, आप बुरा न मानें तो मैं आपके घर आना चाहता हूँ। पर आने से पहले आपकी अनुमति लेना जरूरी समझता हूँ।'' -''अरे सर, घर आने के लिए भला कैसी अनुमति? मेरी माँ हैं अकेली, उनसे तो आप कभी भी मिल सकते हैं। उसमें मेरी अनुमति जरूरी नहीं।''- दीप्ति बोली।

राघवेन्द्र कहने लगे, ''दीप्ति जी, मैं तो एक विशेष काम के लिए आपके घर आना चाहता हूँ - जब आपकी हाँ होंगी, तभी तो मैं आपके घर आ सकूंगा।''

-''अरे सर कहिए! मेरी कौन-सी परमीशन चाहिए आप तो बिल्कुल हैड- क्वार्टर जैसी परमीशन माँग रहे हैं।'' दीप्ति ने हँसते हुए जवाब दिया।

-''दीप्ति जी, ये परमीशन हैड-क्वार्टर की परमीशन से बड़ी है। मैं आपसे मन ही मन प्यार करने लगा हूँ और चाहता हूँ। आप मुझे पसंद करती हैं या नहीं?''

अचानक अपने से सीनियर डी.एस.पी. की बात सुनकर लाज से दीप्ति का चेहरा गुलाबी हो उठा। उसके मन में तो पहले से राघवेन्द्र के प्रति सम्मान और आदर भाव था। वह उसकी सहज सरलता से प्रभावित थी। उसके माता-पिता से बगैर संदर्भ दो बार मिल भी चुकी थी।

''मेरी परमीशन है सर!'' दीप्ति ने धीमे स्वर में सकुचाकर कहा और तेजी से बाहर निकल गयी।

❑❑❑

शिक्षा का महत्व

● भुवनेश कुमार सेन
भीलवाड़ा शाखा कार्यालय

'अरे पूरवा, जल्दी करो। जल्दी से तैयार हो जाओ, स्कूल का टाइम हो रहा है, आज भी मैं तुम्हारी वजह से काम पर लेट पहुचूंगी और मेमसाहब का मुहँ फिर फूल जाएगा।'. मंजू ने एक सांस में सब बोल दिया।

'आ रही हूँ माँ। तुम भी.., कितनी बार तुमसे कहा है- अब से मेरा नाम पूरवा नहीं ''पूर्वी कुमारी'' है।.'

'क्या! हाँ- हाँ गलती हो गई, वो क्या है ना बचपन से ही मैं तुझे लाड़ से पूरवा बुलाती आई हूँ ना, इसीलिए वही आदत पड़ गई है, मैं तो भूल ही गई जब से हमारी बिटिया स्कूल जाने लगी है, तब से वो 'पूरवा' से 'पूर्वी' हो गयी है,' मंजू ने अपनी बेटी को चूमते हुए कहा।

'हाँ, तो पूर्वी कुमारी जल्दी से तैयार हो जाओ और स्कूल जाओ। मुझे भी अपने काम करने जाना है।' और वह पूरवा को तैयार करने लगी। तभी पूरवा ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, 'माँ मेरे स्कूल में जितने भी बच्चे है वह सब अपने-अपने घरों में रहते है, बस एक मैं ही हूँ जो इस सीवर-पाइप को ही अपना घर मानती हूँ। बताओ ना माँ, हमारा अपना घर क्यों नहीं है? हम कब अपने घर में रहेंगे? मेरी सहेलियाँ मुझसे मेरे घर आने के लिए कहती हैं तो मैं उनको कुछ ना कुछ बहाना बना के टाल देती हूँ। मैं उन्हें कैसे बताऊँ कि हमारा कोई घर नहीं है। हम इस सीवर-पाइप में रहते है, बताओ ना माँ, मैं अपनी सहेलियों को क्या जवाब दूं?'

मंजू चुपचाप पूरवा की सारी बातें सुन रही थी। उसने पूरवा को अपने पास बिठाया और बताया कि उनका भी अपना एक घर था, जिसमें वह उसके बाबा व उसका भाई- सब लोग हँसी-खुशी रहते थे। लेकिन एक बार उसके भाई की तबीयत बहुत खराब हो गयी और उसके इलाज के लिए बहुत सारे पैसों की जरूरत थी, तो उसके बाबा ने अपना मकान गिरवी रख कर पैसे उधार ले लिए और उसके भाई का इलाज करवाने लगे। लेकिन फिर भी वे उसको बचा ना सके और इस दुःख में उसके बाबा भी बीमार रहने लगे। उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया और सारे घर की जिम्मेदारी मेरे कंधों पर आ गयी। मैं बाबा की जगह सेठ जी के घर पर काम करने लगी, किन्तु फिर भी उनका कर्ज कम ही नहीं हो रहा था। वे दिन-रात बस यही कहते रहते थे कि यदि एक महीने में मेरा पूरा कर्जा नहीं उतार पाए तो मैं तुम्हे इस मकान से निकाल दूँगा। हमने अपने सारे गहने, बर्तन, पैसा सब कुछ सेठ को

दे दिया, फिर भी हम उसका कर्ज नहीं उतार पाए और एक महीने बाद सेठ ने हमको घर से निकाल दिया। तुम्हारे बाबा ये सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाए और चल बसे। उनकी एक ही इच्छा थी कि मेरे बाद मेरी बेटी पढ़-लिख कर हमारे मकान को सेठ से छुड़वा ले जो कि हमारे अनपढ़ होने की वजह से सेठ ने हड़प लिया था।

हम दोनों इतने पढ़े-लिखे तो थे नहीं, जो कागजी कार्यवाही को समझ पाते और हमने मकान के कागज सेठ को मात्र दस हजार रुपये में दे दिए। उसके बदले मैं मैंने सेठ के घर कई सालों रात-दिन काम किया, अपने सोने के गहने भी दे दिए, लेकिन फिर भी उसका कर्ज नहीं उतार पाए और अपने ही घर से बेघर कर दिए गए। इसीलिए आज हम इस पाइप में रहने को मजबूर हो गए। रोते-रोते मंजू अपने अतीत में चली गयी।

पूरवा ने अपनी माँ के आंसू पोंछते हुए कहा 'चुप हो जाओ माँ। मैं एक दिन पढ-लिख कर कुछ बन के दिखाऊँगी और फिर अपना घर भी छुड़वा लूंगी। तुम देखना माँ, तुम्हारी पूरवा सब ठीक कर देगी। मैं बहुत मेहनत करुँगी और तुम्हारी तपस्या को बेकार नही जाने दूँगी।' और उसने अपनी माँ को गले लगा लिया।

'अच्छा, चलो, स्कूल जाओ पूर्वी कुमारी। देर हो रही है।'

'अच्छा माँ। बाय- बाय। मैं स्कूल जाती हूँ। और हाँ, मैं बड़े गर्व से सबको बताऊँगी कि मैं यहाँ रहती हूँ और मेरी माँ कितनी मुश्किलें सहकर मुझे पढ़ा-लिखा रही है।'

(हिन्दी पखवाड़े की 'चित्राधारित रचना' प्रतियोगिता में पुरस्कृत)

❑❑❑

गतिविधियां और उपलब्धियां

जयपुर क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

चंडीगढ़ क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

गुवाहाटी क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

पुणे क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

अहमदाबाद क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

हैदराबाद क्षेत्रीय कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

गतिविधियां और उपलब्धियां

प्रधान कार्यालय, लखनऊ में हिंदी कार्यशाला

नई दिल्ली कार्यालय में संयुक्त हिंदी कार्यशाला

कोयम्बत्तूर शाखा कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

नराकास, कोयंम्बत्तूर के तत्वावधान में अंतर–बैंक हिंदी प्रतियोगिता

जोधपुर शाखा कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

तिरुप्पुर शाखा कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

टेलीफोन

● ओमप्रकाश मंजुल
पीलीभीत

'तुम्हीं पिया चिकारा'। टेलीफोन पर पत्नी से यह वाक्य कहने की उसकी आदत ऐसी ही थी, जैसे दो सहेलियों के मिलने पर 'हाउ आर यू' की शॉर्टफार्म 'हाय' कहने की होती है। पत्नी जब भी मायके जाती थी, तो उसके तीन दिन बाद ही उसका प्यार पिघलकर टेलीफोन के माध्यम से उसके कानों में प्रविष्ट होने के लिए बेताब हो उठता था। फोन पर प्रिया से उसका प्रथम वाक्य यही होता- 'तुम्हीं पिया चिकारा'। गत दस वर्षों से वह इसी इतालवी वाक्य द्वारा पत्नी के प्रति प्रेमाभिव्यक्ति करता आ रहा है। जिसका अंग्रेजी रूपान्तर होता है, 'आई लव यू' तथा हिन्दी 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।' गायत्री जयंती की पूर्व संध्या पर वह हरिद्वार में शान्ति ध ाम आश्रम में अपने माँ-बाप के साथ दस दिनों से प्रवास कर रही थी। वहाँ भी वह इसी वाक्य को कहने के लिए भावुक हो उठा था।

शायद प्रारब्धवश ही लगभग 20 वर्षों से ग्रीष्मावकाश कभी भी उनके लिए अनुकूल नहीं रहा है। गर्मी में अक्सर कोई न कोई ऐसी घटना-दुर्घटना घट जाती है, जो उसे उद्विग्न कर देती है। इन दिनों यदि सबसे बड़ी नहीं तो सर्वाधिक त्रासद दुर्घटना यह हुआ करती है कि उसकी पत्नी किसी न किसी बहाने शांतिधाम आश्रम पहुँचने के बाद कम से कम एक महीने तक घर की ओर मुँह नहीं करती है। आश्रम के संचालक-मण्डल में उसके पिता एक न्यासी हैं और जीवनदानी के रूप में अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आश्रम में रह रहे हैं। एक-सवा माह के बाद जब मधुरिमा घर लौटती है, तो वह हमेशा ही 'दवाई चल रही थी', 'अमुक बच्चे को चोट लग गई थी', 'अमुक बच्चे का ऑप्रेशन हुआ था', 'अम्मा का हाथ टूट गया था', 'साथ आने वाला कोई नहीं था', इत्यादि बहानों द्वारा अपने वाक-जाल में फांसकर उसे संतुष्ट कर देती है।

संपूर्ण उत्तरांचल गर्मी की तपन से मुक्ति दिलाता है। फिर शांतिधाम का आध्यात्मिक, देवोपम, शांतिदायक और अलौकिक रस-रंग से पूरित-संपूरित वातावरण यूँ ही आम आदमी को आकर्षित कर लेता है। जिसके माँ-बाप, भाई-बहन और उनके बच्चे भी वहां रहते हों तथा जिसे आग्रहपूर्वक वहाँ बुलाया जाता हो, वह वहां क्यों नहीं जायेगा और वहां जाने के लिए क्यों न व्यग्र होगा। यदि नहीं बुलाया जाता, तो उस अभागे को ही आने-रहने के लिए नहीं बुलाया जाता।

अमूमन वर्ष भर एक ही स्थान पर मास्टरी की नौकरी में मरने-खपने वाले लोग जून की छुट्टियों में किसी ठंडे स्थान पर जाने के लिए लालायित रहते हैं, ताकि वर्ष भर की थकान व तनाव दूर किया जा सके और आगामी सत्र से जूझने के लिए स्वयं को पुनः तरोताजा व ऊर्जापूर्ण बनाया जा सके। पर उसकी विडम्बना देखिए कि उसके यहां उल्टा चलन है। जून के प्रायः हर अवकाश में उसे तेली के बैल की तरह घर के कोल्हू में पिरना पड़ता है और शेष परिजन हरिद्वार-ऋषिकेश परिक्षेत्र की शीतलता का आनंद लिया करते हैं।

कितनी भयावह है उसके यहां की गर्मी! 'गर्मी' के नाम से ही पसीना छूटने लगता है। ऊपर से अंगारे बरसाने वाली, तपन में पेट की आग शांत करने वाली भोजन-निर्माण सहित चूल्हा-बर्तन आदि की अनेक क्रियाएँ। वहां कोई शाकाहारी भोजनालय भी तो नहीं है, जो महीना-सवा महीना बर्तन-चूल्हा, आटा-चावल के चक्कर से बचा जा सके। बिजली 24 घण्टे में 24 बार आती है। कुल मिलाकर पत्नी की तरह नखरे दिखाते हुए 3-4 घण्टे ही रुकती है। पंखे ऐसे चलते हैं जैसे चुंगी के ठेले को कभी थका हुआ भैंसा खींचा करता था। उसकी मुसीबत तो और भी अधिक बढ़ गई है। एक सर्किट शार्ट हो गया, सो मिस्त्री न मिलने के कारण चार दिनों तक गर्मी में मरना पड़ा। पूरे परिवार के हरिद्वार चले जाने पर दूध भी कम करके आधा लीटर करना पड़ा। जब चाय की तलब होती या एलर्जी के अटैक के कारण जुकाम व छींकें शुरू हो जातीं, तब वह या तो बाजार जाकर चाय पी आता या कई बार और अधिक मात्रा में चाय पीने की जरूरत महसूस करता, तो वहाँ से दूध ले आता। पड़ोसी दद्दा प्रायः उसे थैली में दूध

लाते हुए देखते, पर एक दिन भी चाय को न पूछा, भोजन तो बहुत बड़ी बात थी। एक दिन सुबह को उन्होंने आवाज लगायी, तो वह समझा, आज सुबह-सुबह दद्दा चाय लेकर आये हैं। पर, पता चला कि वह सामने वाली सड़क बनवाने के लिए अधिशासी अधिकारी के पास लेकर चलने के लिए कहने आये हैं। उसके भाग्य में ही 'दीरघ निदाघ' का भोग लिखा है जब उसके परिजन उसे नहीं मिटा सके, तो पड़ोसी से क्या उम्मीद की जाये!

30 मई को जब परिवार हरिद्वार जा रहा था, तब वह अनमना अवश्य था, पर उसका अर्थ यह नहीं था कि उसका परिवार से संवाद ही समाप्त हो जायेगा। 31 मई को हरिद्वार सकुशल पहुँचने की जब उसे सूचना नहीं मिली, तब उसने कई बार आश्रम के पुराने नंबरों पर फोन किया। पर फोन न लगा। तीन रातों तक उसने 11 बजे तक फोन आने की प्रतीक्षा की और प्रतीक्षा करते-करते सो गया। अगले दिन वह शान्तिधाम के ही एक अनुयायी, दिवाकर गुप्ता से मिला और उन्हें अपनी पीड़ा सुनाई। गुप्ता जी ने बताया, ''शान्तिधाम के नम्बर बदल गये हैं। मेरे पास अभी एक पत्र आया तो था, कहीं पड़ा होगा। ढूँढ़ लेंगे।'' पर, उस दिन उन्होंने पत्र को ढूंढ़ने की जहमत नहीं उठायी। वहां से वह शान्तिधाम आश्रम की स्थानीय शाखा की मुख्य कार्यकर्त्री, हरजीत कौर के घर गया। उसने पूछा, ''बहन जी! क्या पार्वती बुआजी शान्तिधाम गयी हैं? वे तो 30 मई को जाने के लिए कह रही थीं।'' इस पर बहन जी ने अनभिज्ञता प्रकट की। उसने बहन जी से बुआ का नंबर लिया और बहन जी के आग्रह पर उन्हीं के लैण्डलाइन से पार्वती बुआ को फोन किया, ताकि पता चल सके कि बुआ जी बताई गई तिथि पर शान्तिधाम गयीं भी कि नहीं। न गयी हों, तो कम से कम शान्तिधाम आश्रम के नये नंबर दे दें। उसे आशा थी, महिला मण्डलकी अध्यक्ष होने के कारण आश्रम के बदले हुए नंबर की सूचना बुआजी को जरूर होगी। पर अब भी फोन पर देर तक मात्र मिनमिनाहट की लम्बी लाइन-सी आवाज ही आती रही।

पत्नी के साथ पुत्र, आदित्य और छोटी पुत्री आभा 30 मई को ही शान्तिधाम गये थे। बड़ी बेटी, किरण एक महीने पूर्व से ही नाना-नानी के पास रह रही थी। बड़ी बेटी तीन वर्ष पूर्व अंग्रेजी से एम. ए. कर चुकी थी, बेटा मेडिकल प्रथम वर्ष का छात्र था और छोटी बेटी हर क्लास में कॉलेज को टॉप करती हुई बी.ए. अंतिम वर्ष की छात्रा थी। सो तीनों संतानें न उम्र में कम थीं, न योग्यता में। मतलब यह कि तीनों ही बच्चे काफी समझदार थे।

10 जून की पूर्व संध्या पर वह मधुरिमा को फोन करने के लिए पुनः अधीर हो उठा। अधीर भी क्यों न होता, 10 जून को 'गायत्री जयंती' जो थी। 29 वर्ष पूर्व आज के ही दिन 'गायत्री जयन्ती' के शुभ अवसर पर वह शान्तिधाम आश्रम की देवकन्या, मधुरिमा से परिणय-सूत्र में बँधा था। अतः आज विवाह की 30वीं वर्षगाँठ पर अपनी परिणीता पत्नी को 'तुम्हीं पिया चिकारा' कह कर बधाई देने के लिए तथा प्रातः यज्ञ में भावी सफल दाम्पत्य जीवन की कामनार्थ विशेष आहुतियाँ दिलवाने के लिए नौ जून की सायं 7 बजे से 10:30 बजे रात तक फोन मिलाने का उपक्रम करता रहा। शान्तिधाम में प्रतिदिन प्रातः कालीन यज्ञ में आश्रम से जुड़े कार्यकर्ताओं तथा उनके संबधियों क जन्म व विवाह के दिवसों पर विशेष आहुतियाँ देने की परम्परा है। उसे याद आया कि 8 साल तक आश्रम में रहने वाला एक युवक पुनः अपने घर वापस आ गया है। सो, उसे तो वहां की नवीनतम गतिविधियों की जानकारी होगी ही। उसने निकटस्थ नगर में निवास कर रहे, इस युवक को फोन किया। करीब साढ़े नौ बज चुके थे। युवक ने चोंगा उठाया, तो आलस्य और उपेक्षा से जड़ी-जकड़ी उसकी आवाज सुनकर लगा, मानो यह तो आश्रम को जानता ही नहीं। खैर, उसने डायरी देख वही घिसे-पिटे नंबर बताये। फिर उसने साढ़े नौ से साढ़े दस तक पुनः दिवाकर गुप्ता को कई फोन किये कि शायद अब तक उन्होंने शान्तिधाम के नये नंबरों को खोज लिया हो। पर, उनके यहां किसी ने फोन नहीं उठाया। इसी बीच उसने शान्तिधाम के अन्य अनुयायी, हर्ष गुप्ता के लैण्डलाइन पर भी कई बार ट्राई किया, पर वहां भी बस घण्टी टनटनाती रही।

अगले दिन, 10 जून 'गायत्री जयन्ती' को आश्रम की स्थानीय शाखा पर सामूहिक यज्ञ था। उसने लोगों से पूछा कि यहां से 'शान्तिधाम' को फोन पहुँच रहा है या नहीं? शाखा-संचालक, कमलाकर कटियार बोले, ''क्यों नहीं! मेरे पिताजी कल ही वहां पहुंचे हैं। मैंने कल सात बजे सायं शान्तिधाम के फोन के माध्यम से उनसे बात की थी।'' सायं 7 बजे उसने फिर शान्तिधाम का नम्बर मिलाया, ताकि वहां के फोन एक्सचेंज पर मधुरिमा को बुलाया जाये और उससे वह बात कर सके। पर नतीजा वही ढाक के तीन पात ही रहा। उसे याद आया कि गत नवरात्र पर उसके पास शान्तिधाम से जो पत्र आया था, शायद उसमें नये नंबर्स ही हैं। सो, क्यों न वह पत्र ढूंढ़ कर उन्हीं नंबरों पर संपर्क करने का प्रयास करे। काफी खोजने के बाद उसे वह पत्र मिल ही गया। उस पर पुराने नंबर ही अंकित थे। उसने बारी-बारी सभी को डायल किया, पर उधर से कोई भी उत्तर नहीं मिला। हां, यह एक सूचना अवश्य पायी कि 'अब हरिद्वार के कोड के लिए 0133 के बाद

4 भी लगायें। अब हरिद्वार का कोड 01334 हो गया है।' उसके शरीर में प्राण पड़ गये। सोचा, गलती पकड़ में आ गई है। अब तो किसी भी नंबर से फोन किया जा सकता है। सो उसने पहला नंबर डायल किया। इस बार ज्ञात हुआ कि यह नंबर वहां से ले लिया गया है। फिर उसने अगला पुराना नंबर डायल किया। घण्टी बजी। इस बार तो उसे जान में जान पड़ती ही नजर आयी। उधर से ''हैलो'' हुआ। इधर से वह बमुश्किल ''डा0 अध्यात्म प्रकाश के आवास पर'' ही कह पाया कि उधर से आवाज आयी, ''डा0 अध्यात्म प्रकाश? कौन अध्यात्म प्रकाश? रांग नंबर।'' उसने सोचा, डायल करने में कोई गलती हो गयी। सो पुनः प्रत्येक डिजिट को अति सावधानी से दबाया, घंटी बजी, ''हैलो'' हुआ। उसने पूछा, ''क्या आप शान्तिधाम....'' पूर्ण होने से पूर्व ही ''रांग नंबर'' आ गया। फिर उसने तीसरे नंबर पर डायल किया। घंटी बजी। फोन उठा, ''हैलो'' हुआ। उसने ''प्रणाम'' कहते हुए अपनी बात कहनी चाही। उधर वाला संभवतः शान्तिधाम की संस्कृति से परिचित था, जो ''प्रणाम'' सुनते ही समझ गया कि कॉल का संबन्ध शान्तिधाम से है। सो, उधर से उत्तर आया, ''आप क्या शान्तिधाम फोन कर रहे हैं?'' ''जी।'' तत्काल ''रांग नंबर'' आ गया। शेष बचे दो नंबरों को भी उसने ट्राइ किया, पर कुछ न मिला। क्या करता बेचारा, झुंझला कर फोन पटक दिया। शायद शान्तिधाम के नम्बर तीसरी बार बदल गये थे।

उसके दिमाग में विचार कौंधा। उसने कमलाकर कटियार को फोन किया, ''शान्तिधाम का नंबर, जिस पर आपने फोन किया था, बता दीजिए। अन्यथा मैं आपके पास ही आ रहा हूँ। वहीं से डॉ0 साहब को फोन करूँगा।'' कमलाकर ने बताया, ''असल में वह नंबर मैंने मोनू (आश्रम के एक अन्य आत्मदानी का पुत्र) से लिया था। अगर वह मिलता है, तो मैं आधे घण्टे के भीतर आप को बता दूंगा।'' वे फिर बोले, ''डॉ0 साहब का मोबाइल क्यूं नहीं मिला लेते?'' उसने बताया, ''वह भी बच्चों को ही मालूम है। और वे सब वहीं है।'' कमलाकर को शायद मालूम नहीं था कि डॉ0 अध्यात्म प्रकाश की मोबाइल सेवा दूसरों के लिए थी, दामाद के लिए नहीं। इससे पूर्व वे कई बार संकेत दे चुके थे कि वह मोबाइल पर उन्हें रिंग न किया करे, उन्हें मँहगा पड़ता है। एक-दो बार उनकी प्रिय पुत्री, मधुरिमा ने भी उसे समझाने की कोशिश यह कहते हुए की थी, 'अम्मा' बता रही थीं कि कभी-कभी मोबाइल का इतना पेमेंट करना पड़ता है कि पैसे पूरे नहीं पड़ते।'' यह दीगर बात थी कि अब मोबाइल पर इनकमिंग चार्जेस खत्म हो गये थे और उसे फोन करने की सख्त जरूरत थी। सो, उसे यदि डा0 साहब का नंबर मिलता, तो अवश्य उस पर फोन करता। उसने खुद मोनू के मोबाइल पर फोन किया। पर, मोनू के बाहर, दूर होने के कारण उसका नंबर न लगा। ऐसी दशा में कमलाकर द्वारा मोनू से पूछकर आश्रम का नंबर बताने का प्रश्न ही नहीं उठता था। फिर भी उसने आधा घण्टा तो क्या आधी रात तक कमलाकर के फोन की प्रतीक्षा की।

जाहिर है, बात लगभग बीस बरस पुरानी है, जब बाकी सब लोगों की तरह उसके पास भी मोबाइल नहीं था। और लैंडलाइन से वह इतना त्रस्त हो चुका था कि मन आता था कि चोंगा को अभी पटक दिया जाये। टेलीफोन नाजुक समय के लिए ही तो होता है। कोई अपनी पत्नी को अपनी कैफियत भी नहीं बता सके, तो ऐसे फोन को रखने से क्या फायदा!

उसकी बेचैनी निरंतर बढ़ती जा रही थी। अब उससे अजीब व ऊट-पटांग काम भी हो जाते। उसकी निर्णयात्मक बुद्धि को मानो लकवा मार गया था। इधर की चीज को रखने के लिए वह उधर चला जाता है, और फिर बीच से लौटना पड़ता है। चाबी का गुच्छा तीन बार बाजार में भूल आया वह। ईश्वर को धन्यवाद है कि तत्काल ही दुकान पर जाने से गुच्छा मिल गया, अन्यथा घर के कई तालों को तोड़ने की नौबत आ जाती। एक बार पूजा की प्लेट रसोई घर में रख आया और रसोई घर की बड़ी प्लेट पूजाघर में रख दी। एक दिन तो वह अपने पर बहुत देर तक हंसता रहा, जब उसे पता चला कि संध्या के समय घंटी बजाता हुआ जिस आरती को इष्ट के समक्ष घुमा रहा है, उसकी बत्ती तो जली ही नहीं थी। 13 जून की प्रातः को मानो उसे 'तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा' की ही अनुभूति होने लगी थी। वह एक दुकान पर बैठा था। उसके हाथ में चाबी का गुच्छा देखकर बात बढ़ गई। और फिर अनेक बातें निकल आयीं। उसके मित्रों व परिचितों ने उसके प्रति सहानुभूति भी प्रकट की और आश्चर्य भी कि उसकी पत्नी और बच्चे वास्तव में 'समझदार' हैं, जो पति और पिता को घर में नितांत अकेला जानते हुए भी उसे फोन नहीं करते। उसने मित्रों को बताया, ''भई! वे लोग वहां जाकर सब कुछ भूल जाते हैं। जब भी वे लोग शान्तिधाम होते हैं, फोन मैं ही करता हूँ। यह हमारे कुल की परम्परा है।'' एक बोला, ''वाह री! तेरी कुल-परम्परा। सब कुछ भूल जाना ठीक है, पर पति और पिता को भी जो भूल जायेगा, उससे क्या आशा की जाये! बच्चे तो बाप के होते ही हैं, शादी के बाद पत्नी भी अपने पिता की नहीं, पति की हो जाया करती है। आखिर दोनों का जीवन भर का साथ है, भाई!'' दूसरा बोला, ''तुम्हारे बच्चे क्या खाक समझदार हैं, जो अपने बाप का हाल-चाल भी नहीं पूछ सकते! शांतिधाम के एक्सचेंज से सारी

दुनियां को फोन आते-जाते हैं।'' तीसरा बोला, ''संभव है, उधर से फोन किया गया हो, पर किसी गड़बड़ी के कारण इन तक न पहुँचा हो।'' वह बोला, ''बेटों को पड़ोसियों के नंबर भी तो याद हैं।'' चौथा बोला, ''शान्तिधाम के उनके नाना-नानी, मौसा-मौसी, मामा-मामी आदि हैं ही, गुरुदेव का सूक्ष्म संरक्षण है और अनेकानेक प्रकार की मेडिकल व जीवन की सुविधाएं हैं, पर आप तो घर में कत्तई अकेले हैं। आप को कुछ हो गया, तो किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। फोन का कोई नियम नहीं होता। और यदि होता है, तो पहला नियम यह होता है कि हम फोन उसे करते हैं, जिसे हम प्यार करते हैं। और दूसरा नियम यह है कि फोन हमेशा अकेले और एकांत में रहने वालों को किया जाता है, ताकि उसकी हारी-बीमारी, खैरशल्ला-खैरियत की बराबर सूचना मिलती रहे।'' एक संभ्रात वृद्धजन ने टिप्पणी की, ''आप के बीवी-बच्चे तो जैसे 'समझदार' हैं, वैसे हैं ही, सर्वाधिक समझदार आपके ससुर हैं, जो प्रेम भले ही आपसे न करें, शिष्टाचार भी नहीं निभा पाते। उनके पास लैण्डलाइन और मोबाइल दोनों फोन हैं, आलवर्ल्ड गायत्री परिवार को वे फोन करते रहते हैं, पर अकेले रहने वाले अपने दामाद का कभी हाल-चाल नहीं पूछते। मान लो अवसाद या किसी अन्य कारण से तुम मर गये, तब तुम्हारी सड़ी हुई लाश मिल जायेगी लोगों को।''

घर आते ही लोगों के शब्द उसके कानों में गूंजने लगे। अवसाद का ज्वर उसे तेजी से अपने आगोश में जकड़े जा रहा था। उसे अपने इन तथाकथित अपनों की तरह-तरह की तस्वीरें दिखायी देने लगीं। उसे याद आया, गत वर्षों में भी उसे पत्नी की एक ही शिकायत रही कि वह आश्रम में अधिक दिनों तक ठहरा करती है। पर, उसने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। पिछले साल ही जब वह शान्तिधाम से एक माह बाद लौटी थी, तब उसने पत्नी से यहां तक कहा था, ''मधुरिमे! इतने दिनों बाद आया करोगी, तो कभी तुम्हें घर में मेरा सड़ा हुआ शव ही मिलेगा,'' पर, शायद उस पत्थर-दिल पर कोई असर नहीं हुआ था। अगले ही पल उसे पत्नी का एक अन्य विकर्षक रूप याद आया। दो वर्ष पूर्व जब वह बाइक से दुर्घटना-ग्रस्त होकर लहूलुहान हो घर पहुँचा था, तब सहानुभूति के शब्द तो दूर, वह उससे तीन दिन तक नहीं बोली। चौथे दिन जब उसी ने बोलने की पहल की, तब भी प्रिय पत्नी ने उसके जख्मों पर हमदर्दी का मरहम लगाना उचित न समझा। वह महीना भर बेटियों की मदद से खुद ही अपनी मरहम पट्टी करता रहा। पत्नी के विद्रूप और वितृष्णापूर्ण रूपों की रील चली, तो फिर घण्टों चलती ही रही।

भावुक हृदय में ईर्ष्या आग में घी की भांति काम करती हैं। वह सोच रहा है कि हरिद्वार में इस समय उन लोगों को कितना मजा आ रहा होगा, जो अपने बीवी-बच्चों के संग शाम को गंगा-दर्शन तथा अन्य रम्य व सुरम्य स्थलों-आश्रमों का भ्रमण कर रहे होंगे और शान्तिधाम के स्वर्ग जैसे जीवन को जी रहे होंगे। एक वह है, जो नगर की नारकीय जिंदगी अकेले जीने के लिए अभिशप्त है। वे लोग तो कह कर गये थे कि देहरादून वाले डॉक्टर का पता लगा कर उसे एलर्जी के इलाज के लिए फोन से बुला लेंगे। पर, उनमें से किसी ने भी किसी कारण से भी तो फोन नहीं किया। रक्तचाप और हृदय का वह पहले से ही मरीज था। उसकी बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी। उसे लगा कि उसका सिर अब फटा कि तब फटा। वह सिर पकड़ कर वहीं अहाते की फर्श पर लेट गया और बेचैनी से शरीर को पटकने लगा। कुछ देर लेट कर सब कुछ भुला देने की कोशिश से भी जब उसे राहत नहीं मिली, तब वह उठ बैठा। उसने तख्त पर रखी 'अखण्ड ज्योति' (जून) का एक लेख पढ़ा, पर वह तब भी शांत न हुआ। तब उसने वहीं रखे 'राष्ट्रधर्म' को पढ़ना शुरू किया। इससे भी उसे कोई आराम न मिला। उसे भूख सता ही रही थी। सो, अपने को व्यस्त करने के लिए वह उठा। उसने पीपों से चावल और अरहर की दाल निकाल कर मिलाये और गैस पर खिचड़ी पकाने की तैयारी करने लगा।

इस बार मानसून समय से कुछ पहले आ गया था। आकाश में उमड़ते-घुमड़ते काले बादलों को देखकर उसे कालिदास-कृत, 'मेघदूतम्' के यक्ष-यक्षिणी याद आने लगते, कभी उसे तुलसी की, 'घन घमण्ड नभ गरजत घोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा', अनेकार्थी चौपाई याद आ जाती। फिर वह अपनी विवश स्थिति पर रह-रह कर बिलखते-बिलबिलाते हुए बड़बड़ाता, 'इस त्रिया के कारण मैं अपने मां-बाप की इच्छा भर सेवा न कर सका। मां से मैं जब भी प्रेमपगी बातें करता था, तब यह ईर्ष्या से कुढ़ने लग जाती थी। एक बार तो इसने रात में ही सूटकेस लेकर हरिद्वार जाने की तैयारी कर ली थी। बड़ी मुश्किल से मनुहार करके मैंने इसे रोका था। मैंने मां के प्रति अपने प्रेम को उसी दिन समेट लिया था। फिर भी वह मेरी न हुई।' फिर वह पत्नी के पिता के बारे में सोचने को विवश होता। उसके अध्यात्मवादी ससुर को आज भी नहीं मालूम कि उसके मां-बाप जिंदा हैं या मर चुके हैं। उसे इस निष्ठुर महापुरुष के बरक्स अपने भोले-भाले पिता की याद आ जाती, जिनके चरण-स्पर्श करते हुए ही उसे अपनी पीठ पर उनके हाथ फिराने का शीतल अहसास हुआ करता था। उसके द्वारा इस महापुरुष के चरण कमलों को सैकड़ों बार स्पर्श किए जाने के बावजूद, इसने एक बार भी प्यार-दुलार से उसकी पीठ पर हाथ फिराने की गलती नहीं की। उसे

याद आया, एक बार दिसंबर माह में जब वह इनके यहां ठहरा हुआ था, तब अचानक कोल्ड एलर्जी का अटैक पड़ जाने से सर्दी-खांसी ने उसे बुरी तरह जकड़ लिया था। उस समय वह भिखारियों की भांति कटोरे में आश्रम के अस्पताल से काढ़ा और दवाइयां उनके घर खुद लेकर जाया करते थे। इन्हीं दिनों एक रात उसका ज्वर काफी बढ़ गया। वह बेचैन हो उठा। उसकी सास ने डॉ0 साहब से कड़क आवाज में कहा, ''लल्ला बुखार से व्याकुल हैं, इन्हें देख लो। दुनियाँ भर का इलाज करते घूमते हो और अपने जमाई को देखते भी नहीं।'' इसकी प्रतिक्रिया आज भी उसके कानों में गूंज रही है। वे बोले, ''मेरे हाथ गीले हैं, नहीं तो मैं देख लेता।'' उसे यह सारी कहानियां याद आ रही हैं। 'कितना अभागा हूँ मैं,' वह सोच रहा है। इस हालत में भी पत्नी को उसका कत्तई ख्याल नहीं। वह विवाह के बारे में सोचने लगता है, 'कहते हैं विवाह ईश्वरकृत संस्था है। और यह दो आत्माओं का मिलन है। इससे बड़ा झूठ दूसरा नहीं हो सकता। विवाह दो मानवों के बीच एक स्वार्थपरक व अवसरवादी समझौता है, जिससे दोनों जीवन भर, एक-दूसरे को सहायता देने का वचन देकर अपनी रक्षा व सेवा की युक्ति निकालते हैं। यह दो आत्माओं का पवित्र मिलन नहीं, दो शरीरों का लिप्सापूर्ण गठबंधन है। सात जन्मों तक साथ निभाने की बात और भी अधिक वंचनापूर्ण है। विवाह-वेदी की सप्तपदी पर चल कर संकल्प लेने के बाद भी जो आत्मा है इस जीवन में सात कदम साथ-साथ नहीं चल सकतीं, वे सात जीवनों में कैसे साथ निभायेंगी? विवाह के टेलीफोन पर अक्सर रांग नंबर की कॉलें ही आती हैं।'

कैसे मूर्ख हैं उसके अपने और सगे संबधी, जो नितांत एकांत और अकेले में रह रहे, अपने आत्मीय की खबर नहीं लेते! दुष्टों ने दुष्टता की पराकाष्ठा ही कर दी। अचानक इसी समय मेरे ट्रांजिस्टर में 'मेरे पिया गये रंगून वहां से किया है टेलीफोन' वाला गीत आने लगता है। मैं कहानी को वहीं छोड़ देता हूँ और पास ही बैठी पत्नी जो इसी अंक के 'राष्ट्रधर्म' में छपे मेरे ही लेख को अनुराग से पढ़ रही हैं, की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने लगता हूँ। वह भी मेरी आसक्ति में खिंच कर अशक्त हो मेरे आगोश में सिमट आती है। हम दोनों के ही मुंह से एक साथ निकलता है, 'कितना मूर्ख है वह। पति-पत्नी के आत्मिक प्रेम को संसार का सबसे बड़ा झूठ समझता है। उससे भी बड़े मूर्ख हैं, उसके परिजन और तथाकथित आत्मीय, जिन्होंने उसकी इस मानसिकता के निर्माण में सहयोग किया। पति-पत्नी का प्यार तो वह टेलीफोन है, जिस पर हमेशा प्रेम की सही कॉल ही आती है।'

❑❑❑

कविता

हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!

● डॉ. संजय जोशी
मुम्बई कार्यालय

हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!
रक्त, प्राण से नित्य सींचकर, ऊँच-नीच जीवन की सहकर
खुद का जीवन दाँव लगाकर, तू जीवन को जग में लाए।
त्याग, तपस्या, करुणा, ममता तुझसे ही परिभाषा पाए।।
हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!
रूखी-सूखी खाकर भी तू, शिशु को अमृत-पान कराती।
सूखे में शिशु सोए अविकल, तू गीले में ही सो जाती।
लोरी गाकर नींद बुलाए, आहट पाकर तू उठ जाए।
तेरी महिमा कही न जाए। हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!
पलकों पर है हमें बिठाया। गोदी में है हमें झुलाया।
हाथ पकड़ चलना सिखलाया। चल न सकें तो गोद उठाया।
मूल्य-बोध के संस्कारों को, घुट्टी के संग हमें पिलाए।
तेरा आँचल जैसे जन्नत, हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!
बोल तोतले सुनकर भी तूने है उत्साह जगाया।
सही-गलत का फर्क बताकर, सदा श्रेष्ठतम मार्ग दिखाया।
त्रुटियों को अनदेखा करके, सद्गुण सदा सामने लाए।
बदले में कुछ कभी न चाहे, हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!
तेरा वत्सल भाव अनोखा, जो त्रिदेव ने शिशु बन देखा।
छौनों पर यदि विपदा आए, तू दुर्गा, काली बन जाए।
माँ! जब तू तिरशूल उठाए, चहुँ दिश प्रलय-घटा छा जाए।
महाकाल तब सृष्टि वास्ते, माँ तेरे पग नीचे आए।
मीलों दूर चले हम जाएँ, दूर कभी ना तुझको पाएँ।
तू दिल की धड़कन सुन लेती, दुआ भेज पीड़ा हर लेती।
यदा-कदा हम भूल गए पर सदा तेरी रहमत के साए।
तू गुरु, पिता, सखा हे माता! माँ! तुझमें यह विश्व समाता।
बाल-सुलभ इस काव्य-यत्न से, सूरज को क्या दीया दिखाएँ!
यादों को बस ताजा करके, स्नेह-सरित में गोते खाएँ।
अमृत का माँ! महापर्व तू, देव-दनुज का हरे गर्व तू।
शीश झुका, बस तुझे रिझाएँ। हे माँ! तुझमें विश्व समाए!!

❑❑❑

गीता बजाज - एक समर्पित जीवन

● वेद मखीजा,
जयपुर क्षे.का.

राजस्थान के सीकर जिले में नीम का थाना कस्बे के श्री माधेलाल चौधरी की पुत्री गीता बजाज का जन्म महाशिवरात्रि के दिन, 15 मार्च, 1919 को खण्डवा (मध्य प्रदेश) में हुआ। दो भाइयों और आठ बहनों के परिवार में वह चौथी सन्तान थी। नीम का थाना के स्कूल में तीसरी कक्षा तक पहुंचते ही 15 वर्ष की छोटी-सी उम्र में गीता के हाथ पीले कर दिए गए। पति थे सीकर जिले के काशी का बास नामक ढाणीनुमा गांव के श्री गिरधारी लाल जी बजाज- जान-माने स्वाधीनता सेनानी, गांधीजी के मुंहबोले पांचवें बेटे जमनालाल जी बजाज के भतीजे और बींजराज जी बजाज के सबसे बड़े बेटे।

विवाह के बाद वे पति के साथ वर्धा गईं, जहां, बापू का आशीर्वाद और सान्निध्य मिला, पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। कोई ढाई वर्ष बाद ही पति नहीं रहे, और 17 वर्ष की अल्पायु में ही गीता बजाज को क्रूर नियति ने वैधव्य की ज्वाला में झोंक दिया। उस दारुण घड़ी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का संवेदना संदेश गीताजी के जीवन में एक नई रोशनी लेकर आया। बापू के शब्दों ने उन्हें न केवल जीने की लालसा दी, बल्कि देश और समाज के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा-शक्ति और उत्कट इच्छा भी। गांधीजी ने लिखा- ''चि. गीता, जैसा तुम्हारा नाम है, वैसा ही रहना हो। विधवापन और सधवापन मन मरजी चीज है। मरना-जीना किसी के हाथ में नहीं है, इसलिए शांत रहो, और अपने को सेवार्पण करो।''

गीता जी ने वैसा ही किया। पति-विछोह के अपने रंज और गम को भूल उन्होंने अथक मेहनत कर अच्छी शिक्षा प्राप्त की। एक जवान अनपढ़ विधवा के मार्ग में जो विपदाएं, कठिनाइयाँ और मुसीबतें आ सकती थीं, वे आईं, पर सभी का सामना करते हुए गीता बजाज अपना रास्ता स्वयं बनाती चली गईं। पति को खोने के तीन माह बाद उन्होंने उनकी निशानी एक पुत्री को जन्म दिया। ऐसे में भी उन्होंने पढ़ाई शुरू कर दी। उनका शैक्षिक जीवन टूटता-जुड़ता रहा। बड़े भाई स्व. सिद्ध गोपाल चौधरी संबल बने, निराशा के घोर क्षणों में उन्होंने बहन को सहारा दिया, उसका मनोबल नहीं टूटने दिया। वनस्थली विद्यापीठ से मिडिल पास किया। बनारस से मैट्रिक और पिलानी से इण्टरमीड़िएट किया। 1945 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. में प्रवेश लिया ही था कि देश में आजादी के दीवानों का ''करो या मरो'' का नारा गूँजा। डॉ. गेरोला के विद्यार्थियों के लिए आह्वान ''स्वतंत्रता यज्ञ में कूद पड़ो'' को सुनकर गीता जी भी बैठी नहीं रह सकीं और उस यज्ञ में अपने हिस्से की आहुति देने के लिए निकल पड़ीं। परिणाम वही हुआ जो होना था, बनारस विश्वविद्यालय से निष्कासन।

गीताजी के जीवन में राजनैतिक पृष्ठभूमि थी ही-पीहर की ओर से पूज्य पिताश्री की उन्मुक्त विचारधारा और बापू के स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित उनकी कार्यवृत्ति और अपने दोनों चाचा, राजस्थान के ख्याति-प्राप्त कर्मठ कांग्रेसी नेता और महात्मा गांधी के सहयोगी स्व. रामनारायण चौधरी और स्वाधीनता सेनानी कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी के देश-प्रेम से आप्लावित साहसिक क्रिया-कलाप और दूसरी ओर ससुराल पक्ष से जुझारू व्यक्तित्व के धनी स्व. जमनालालजी बजाज। इन सबके साथ, बापू की रचनात्मक कार्यावली से घनिष्ठ संयुक्ति। साथ ही, साबरमती आश्रम, वनस्थली विद्यापीठ, हटुंडी और नारेली आश्रम और जयपुर राज्य प्रजामंडल के प्रभाव ने स्वतंत्रता संग्राम में तन और मन से कूद पड़ने की प्रेरणा दी। परिणाम की चिंता न करते हुए सन् 1942 के ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' में अंग्रेजी दासता से दश को मुक्ति दिलाने का बीड़ा उठाए स्व. बी.पी. केसकर, डॉ. राधेश्याम, स्व. सादिक अली, श्रीमती अरुणा आसफ अली और अन्य हस्तियों का साथ पा वह आजादी के संघर्ष में सक्रिय हो गईं। महिला संगठन का कार्य किया, छिपकर रहते हुए बम बनाए, वेश और स्वरूप बदलकर (अधिकतर सिर पर साफा बाँधे पुरुष वेश में) वह बहादुर और निर्भीक महिला आजादी के संग्राम में जुटी रही। आखिरकार दिल्ली में पकड़ी गईं। सजा मिली, लाहौर जेल की काल-कोठरी में बंद कर दी गईं, बाल पकड़कर घसीटी गईं। अँधेरी और बिच्छू जैसे विषैले कीड़े-मकोड़ों से भरी नितांत स्वास्थ्यघातक छोटी-सी कोठरी में जहां पूरे पांव भी न फैल सके, उन्हें डाल दिया गया।

जेल से छूटीं तो तपेदिक और आँत रोग ने शरीर को घर बना लिया। इसी बीच देश स्वतंत्र हो गया। वर्ष 1948 में फिर बनारस विश्व-विद्यालय से ही बी.ए. पास किया।

भुवाली और जयपुर सैनेटोरियम में भर्ती रहीं। जयपुर में ही

आँतों का ऑपरेशन हुआ। शरीर जर्जर हो गया था, पर आत्मा और भावना सबल थी। डॉक्टरी सलाह पर जयपुर की बाहरी बस्ती मोती डूँगरी क्षेत्र में रहीं। निर्धन, पिछड़े हुए, संस्कारहीन, शिक्षा से अछूते, मिट्टी में लोटते-खेलते बच्चों ने आकर्षित किया। बापू के शब्द ''अपने नाम के अनुरूप कार्य करो'' तो सदा तन-मन पर अंकित थे ही- बस जहां एक कमरे में रहती थीं। उसकी खुली छत पर 1952 को गुरुपूर्णिमा के शुभ दिन, 7 जुलाई को बालकों के लिए बाल मन्दिर की स्थापना कर दी। अन्य स्वाधीनता सेनानियों की तरह देश की आजादी के साथ गीता बजाज को एक मंजिल तो मिल गई थी, पर उनका सफर जारी रहा अपनी दूसरी मंजिल की तरफ-बाल मन्दिर के माध्यम से देश और समाज की सेवा।

शिक्षा के इस मन्दिर का संचालन उन्होंने गांधीजी के आदर्शों और सिद्धांन्तों के अनुरूप किया। शिक्षा का माध्यम भी राष्ट्र-भाषा हिन्दी को रखा। देश और समाज की सेवा के बदले में उन्होंने कभी कुछ नहीं चाहा। अपने को प्रचार-प्रसार की चमक से दूर रखकर गीताजी निःस्वार्थ भाव से सेवा करती रहीं।

सेवा की इस लहर में उन्होंने अपने को पूरी तरह डुबो दिया था। उम्र के साथ-साथ रोग से कमजोर होते शरीर और ऊपर से कुछ अति निकट जनों के आकस्मिक निधन का सदमा तो वह किसी तरह सह गईं पर नियति का क्रूर खेल बाल-मंदिर परिसर में बड़ी लगन और मेहनत से जिस सभागार का निर्माण करवाया था, वह किसी कर्मचारी की नादानी से आग की भेंट हो गया। (इस सभागार का उद्घाटन राष्ट्रपति, महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा करने वाले थे, पर कुछ ही दिन पहले उनका यह कार्यक्रम आगे के लिए स्थगित हो गया था।) गीता जी ने इस झटके को बड़े ही धैर्य और वीरता से सहन किया। 12 जुलाई, 1995 को गुरुपूर्णिमा के दिन बाल मन्दिर के अपने सभी साथी-संगियों और परिवारजनों से हँसती बोलती रहीं। रात देर तक काम किया, पर अगले ही दिन सवेरे उनके मस्तिष्क की नस फट गई। ऐसे में भी अस्पताल ले जाते समय उस वीर महिला ने अपने घर की सीढ़ी के पास बैठकर वहीं से कुछ माटी उठाकर माथे से लगाई। होश में नहीं थीं- फिर बुदबुदाईं, ''ठहरो, इसे तो माथे से लगा लेने दो।'' अपनी जननी, भारत माँ को गीता बजाज का यह अंतिम प्रणाम था।

वे सारी उम्र जिन्दगी से जूझती हुई अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ती रहीं और जिसके लिए उनके ससुर बींजराज बजाज उन्हें ''बिन पगड़ी का मोट्यार'' कहा करते थे, वह 3 अगस्त, 1995 के सवेरे तक 22 दिन मृत्यु से लोहा लेती रहीं। अंततः मृत्यु जीत गई, पर उनका लगाया हुआ यह पौधा बाल मन्दिर संस्थान ''एक अकेली महिला का चमत्कार'' उस समाजसेवी और देशप्रेमी गीता बजाज को सदा अमर रखेगा। अब तो बस-

''हर वर्क पर तेरी तसवीर नजर आती है,
आज यह किसने किताबों को खुला छोड़ दिया!''

❑❑❑

कविता

जीता हूँ

● शक्ति सिंह
मुंबई कार्यालय

कोई दीवाना कहता है कोई पागल समझता है,
मध्यम वर्ग की बेचैनी को तो सिर्फ खुदा ही समझता हैं।

मैं कितना टैक्स देता हूं वो कितना घोटाला करते हैं,
ना कोई हिसाब लेते हैं ना कोई फरियाद सुनते हैं।

मेरा संघर्ष इस देश के विकास की कहानी है,
मन्दिर बना नहीं मगर फिर भी, मस्जिद गिरानी हैं।
कभी 70 साल से मेरा, देश है बदल रहा,
कभी तो कश्मीर मे अमन की खुशबू फैलानी है।

ना बीपीएल कार्ड बन पा रहा, ना सब्सिडी ही मिल पानी है,
फिर भी ना जाने क्यूँ सर झुकाने की मेरी आदत पुरानी है।

वोट बिकता नहीं मेरा मैं तो खानाबदोश जीता हूँ,
ट्रान्सफर लेने की मेरी, खेमका सी आदत पुरानी है।

ऊँचा टैक्स मैं देता हूँ, अर्थव्यवस्था की फटी चादर मैं सीता हूँ,
देश के नाम पर मर मिटने की तमन्ना भी नूरानी है।

यहाँ सब लोग कहते है मेरी पाकेट में पैसा है,
तुम समझो तो मेहनत है वरना रगो का खून भी पानी है।

एहसास जिम्मेदारी का है, के मैं फिर भी लड़ता हूँ,
उम्मीदों के बोझ तले, इस देश के, समाज के रोज मरता मैं रोज जीता हूँ

(हिन्दी पखवाड़े की 'चित्राधारित रचना' प्रतियोगिता में पुरस्कृत)

❑❑❑

मरुभूमि की कोयलः मीराबाई

● डॉ. एम शेषन
चेन्नै

आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व सोलहवीं शताब्दी में राजस्थान राज्य में अवतरित मीराबाई हिन्दी भक्ति साहित्य की उपेक्षित भूली हुई कृष्णभक्ति मार्ग की कवयित्री के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आज तक मीराबाई को उनका स्थान प्राप्त नहीं है।

मीराबाई की जीवनी एवं उनके कृतित्व से सम्बन्धित गंभीर शोध कार्य भी विगत 70-80 साल से चल रहा है। तुलनात्मक अध्ययन और शोध कार्य भी उसी अनुपात में हो रहा है। यह भी ध्यान देने की बात है।

हम जैसे सहृदय पाठकों के सम्मुख मीराबाई मरुभूमि की कोयल की भांति प्रतीत होती हैं। 500 वर्ष की लंबी अवधि को लांघकर वे आज भी अपने सुमधुर गीतों के माध्यम से हमारे मध्य जीवित हैं।

मीरा के जीवन पर गौर करेंगे तो हमें लगता है कि उनका समस्त जीवन ही एक अग्नि-परीक्षा के रूप में प्रस्तुत होता है। हिन्दी साहित्य के अध्येता मेरे इस कथन को मानेंगे। राजकुल में जन्मी यह राजकन्या अपने युग के प्रसिद्ध सिसोदिया वंश के राणा सांगा के परिवार में कुलवधू के रूप में ब्याही होकर जब से मेवाड़-चित्तौड़ आयी, तब से लेकर जीवन-पर्यन्त इस कुलवधू को अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, झिड़कियाँ आदि सहनी पड़ीं और इस प्रकार उनका सारा जीवन दुःखमय एवं शोकग्रस्त बन गया। इसे देखकर हमारा हृदय दुःखित होता है। इसी कारण उनका सारा जीवन एक अग्नि-परीक्षा के रूप में हमें परिलक्षित होता है।

मीरा कृष्ण के प्रति गहरे प्रेम एवं तीव्र भक्ति-भाव से युक्त कृष्णभक्तिन हैं। छुटपन से ही कृष्ण के प्रति लगन लगी मीरा बाद में कृष्ण को ही अपना पतिदेव मानकर जीवन-पर्यन्त उनकी भक्ति और आराधना में लगी रहीं। इसी कारण से ब्याही होकर पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने पर भी अपने लौकिक पति भोजराज के साथ पारिवारिक जीवन में जरा भी रुचि न रखने वाली नारी के रूप में हमें लगती हैं। पति के घर में जब से कदम रखा तब से लेकर अब तक उनकी मानसिक शान्ति चली गयी। सास, ननद आदि की झिड़कियाँ, अपशब्द, तिरस्कार, उपेक्षा आदि उन्हें सहन करने पड़े। राजमहल के सुखभोगों को त्यागकर, महल छोड़कर समाज में साधु संतों, ज्ञानी पुरुषों, सूफी दरवेशों के मध्य रहते हुए, पैरों में घूँघर बाँधकर, हाथ में इकतारा, करताल लेते अपने इष्टदेव प्रेमी कृष्ण के प्रेम में, अपने-आपको भूलकर नाचते, गाते जनसमाज के मध्य भक्तिभावना को जगाते हुए वे अपना जीवन व्यतीत करती थीं। सास, ससुर, ननद आदि परिवार के लोग मीरा के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर उन्हें 'कुलनाशी' आदि अपशब्दों से अपमानित करते थे। लेकिन मीरा उनकी निन्दा और तिरस्कार की जरा भी परवाह नहीं करती थीं। जनमानस के मध्य उनका अच्छा-खासा सम्मान हुआ। मीरा को जनता का प्रेम और समर्थन भरपूर प्राप्त था।

अशांत जीवन, अकेले में भटकन और समाज के लोगों के बीच वे अपने भक्तिपूर्ण गीतों के कारण लोकप्रिय बन गयीं। मीरा के भक्तिगीतों ने जनसमाज के मन को आकर्षित किया। छुटपन से कृष्ण को अपना आराध्यदेव और युवावस्था में उन्हीं को अपना पतिदेव मानकर दाम्पत्य प्रेम मार्ग में अग्रसर मीरा का पारिवारिक जीवन इहलौकिक जीवन में- किंचित भी लगाव न रहने की वजह से अपने पति भोजराज के साथ किंचित भी इच्छा न रखनेवाली नारी के रूप में ही वे हमें प्रतीत होती हैं।

मीरा के समस्त गीत और पद गेयपदों के रूप में संगीत की राग, रागिनियों में निबद्ध गीतपरक पद ही हैं। जीवन भर उनकी गहरी भक्ति चेतना, आस्था और विश्वास, कृष्ण के प्रति उनके अपार, अगाध प्रेम की तीव्रता ही उनके समस्त जीवन को चालित करने वाली अद्‌भुत शक्ति प्रतीत होती है। इस कारण प्रयत्नपूर्वक और सायास उन्होंने गीत रचा हो या गाया हो, ऐसा कहीं प्रतीत नहीं होता। उनके समस्त गीत इस तथ्य को हमें स्पष्ट करते हैं। अशांत व्यक्तिगत जीवन तथा समाज के मध्य ही वे गीत गाये गये, ऐसा ही लगता है। राजस्थान के उस मध्यकालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश के मध्य शक्तिहीन नारी के माध्यम से ''आत्मानन्द'' नामक वैयक्तिक अनुभवों की खोज करते हुए बेचैन और अशांत जीवन के मध्य जीवित रहने की इच्छा ही वहाँ दिखाई देती है। मीरा के समस्त पदों में उनके अपने संयम का यथार्थ

हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। एक चलचित्र की भाँति वे गीत हमें लगते हैं। अनेक प्रकार के स्वरों में ये गीत बोलते हुए लगते हैं।

कविता रचने का कोई व्यवस्थित प्रशिक्षण मीरा को मिला हो, ऐसा हमें मालूम नहीं होता। हमारे अभिन्न साहित्य की एक सुदीर्घ काव्य परंपरा एवं काव्यरूढ़ियाँ भी राजस्थानी साहित्य के उस मध्यकाल में नहीं हैं। शास्त्रीय पद्धति में गीत गाने का विधिवत प्रशिक्षण उन्होंने प्राप्त किया हो ऐसा भी प्रतीत नहीं होता। विपरीत राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा पारिवारिक कलह एवं उलझन भरे अशांत जीवन के कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उन्हें मिले मानसिक दबाव की वजह से उनकी भक्ति की तीव्रता उमड़ते हुए गीत के माध्यम से प्रस्फुटित होते हुए बाहर निकलती है, इसे हम उनके गीतों के माध्यम से महसूस करते हैं। अपने वैवाहिक जीवन में ससुराल में भी गीत गाने का विधिवत प्रशिक्षण उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। जीवन भर सास, ससुर एवं ननदों के साथ टकराने एवं संघर्ष करने की दशा ही मीरा की मानसिक दशा रही। यही मीरा के वैवाहिक जीवन में उन्हें प्राप्त अशांत एवं बेचैन परिवेश रहा है।

मीरा के गीतों में उनके वैयक्तिक जीवन से संबन्धित अनेक सूचनाएँ हमें प्राप्त होता हैं। उनके माध्यम से हमें इनके वैयक्तिक जीवन की त्रासदी ज्ञात होती है। उनके गीतों ने उनके जीवन को चालित किया और उनके जीवनानुभवों ने उनके गीतों को चालित किया है।

मीरा के जीवनकाल में, सोलहवीं शताब्दी के उत्तर भारत में प्रचलित कृष्णभक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण गाये गये समस्त गीत ब्रजभाषा में ही गाये गये गीत ही हैं। उस युग में ब्रजभाषा घरेलू भाषा से उभरकर साहित्यिक महत्व प्राप्त भाषा रही। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि सूरदास के समस्त पद और गीत ब्रजभाषा में रचित गीत ही हैं। मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति साहित्य में उसे साहित्यिक महत्त्व और गौरव प्राप्त हुआ। हमारे अपने समय में जिस भाषा को हम बोलते या लिखते हैं, उस खड़ी बोली यानी परिनिष्ठित, परिमार्जित हिन्दी भाषा से वह भिन्न है।

मीरा अपने आध्यात्मिक और धार्मिक पर्यटन के संदर्भ में ब्रजभाषा के प्रदेश में भी कुछ समय रही थीं। अतः उनके गीतों में ब्रजभाषा के शब्दों का बहुतायत प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अपनी गुजरात की यात्रा के दौरान गाये गये उनके गीतों में अनेक गुजराती शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। मीरा अपने जीवन के अन्तिम दस वर्ष गुजरात में रहीं। वहीं रणघोष मंदिर में गीत गाती रहीं। वहीं द्वारिका में वे समुद्र में लीन हो गयीं और जलसमाधि को प्राप्त किया था, ऐसी किंवदन्ती है।

मीरा के गीत संगीत का प्रशिक्षण-प्राप्त संगीतकार के गीत नहीं हैं। उनके गीत उनकी सद्यः स्फूर्त भावना से उत्पन्न प्रतीत होते हैं। वे दाम्पत्य प्रेम नामक प्रेमाभक्ति के रूप में गाये गये सुमधुर गीत हैं। उनके गीतों पर गौर करेंगे तो वहाँ गोपी भाव से प्रेरित प्रेम अथवा राधाभाव के सादृश्य की स्थिति प्राप्त नहीं हैं। अतः मीरा न गोपी हैं और न राधा ही। वहाँ तो केवल पति-पत्नी के बीच का दाम्पत्य प्रेम ही दिखता है। मीरा के गीतों में परकीय भाव भी नहीं है।

अतः मीरा के गीत माधुर्य भाव में सने गीत ही हैं। अपने आराध्य 'नटनागर' के रूप-सौन्दर्य पर मीरा रीझती हैं। गीतों मं संयोग और वियोग, दोनों स्थितियां हमें प्राप्त होती हैं। उनमें भी वियोगावस्था के गीत ही संख्या में ज्यादा हैं। पढ़नेवाले का मन पसीज जाता है, द्रवीभूत हो जाता है।

मीरा के गीतों में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन भी बहुत कम है। ऐसा लगता है कि कृष्ण की लीलाओं में मीरा का मन नहीं रमा है। केवल एक जगह पर कालीय मर्दन के वर्णन का गीत मनोरम लगता है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य एवं रूप-माधुरी के उनके गीत सुननेवाले और पढ़नवाले पाठकों के मन को छू लेते हैं। इसी प्रकार वियोगावस्था के उनके अनेक गीत हमारे मन को प्रभावित करते हैं। ऐसे पद संख्या में ज्यादा हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, मीरा के गीत गेय पद हैं। उनके गीतों को शास्त्रीय संगीत पद्धति में निबद्ध कर राग, ताल, लय सहित गाने की एक रीत चल पड़ी है। हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शास्त्रीय संगीत के मशहूर गायक कलाकार आज उनके गीतों को गाते हैं। रसिक-वृन्द उन्हें सुनकर आनन्द-विभोर हो जाते हैं।

मीरा के गीतों में काव्य की रीति- जैसे ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति अलंकार जैसे काव्य गुण बिल्कुल नहीं हैं। मीरा का प्रेम विरह, मिलन, सुख-दुःख आनन्द, वेदना, शोक, आँसू बहाना, रोना आदि लोकायत मानसिक भावनाओं को पार करते हुए अलौकिक एवं आध्यात्मिक भावों की दिव्य अनुभूतियों के रूप में ही हमें प्रतीत होता है। प्रयत्नपूर्वक, कलात्मक सौन्दर्यानुभूति से युक्त वे गीत नहीं हैं। उनके गीतों में विषय विस्तार भी नहीं हैं सीमित मानसिक भावों की अभिव्यक्ति की वजह से उनमें प्रयत्नपूर्वक कविता रचने का ढंग भी प्रतीत नहीं होता।

मीरा के जीवन पर सूक्ष्म ढंग से दृष्टिपात करने पर वे अपने समय के परिवेश में एक नारी आन्दोलनवादी के रूप में हमें प्रतीत होती

हैं। अनेक प्रकार के संघर्षों और विपरीत शक्तियों का सामना करते हुए अपने दृढ़ मन एवं भक्ति की तीव्रता के कारण अपने भक्ति-मार्ग में अग्रसर होने वाली साहसी एवं दृढ़मनस्वी नारी के रूप में वे हमें दिखाई देती हैं। उस मध्ययुगीन राजस्थान के राजाओं के पुरुष सत्तात्मक दंभ और अहंकार का अपनी भक्ति एवं अहिंसात्मक रीति से सामना करने वाली तथा संघर्ष करने वाली हिन्दी साहित्य की एकमात्र नारी केवल मीराबाई ही हैं। इसी वजह से महात्मा गाँधी जी ने उन्हें 'अहिंसा सत्याग्रही' कहकर उनकी प्रशंसा की है। मीरा को प्राप्त एक मात्र सहयोग और समर्थन जनता का प्रेम और सहयोग ही है। वास्तव में मीरा जनकवि हैं, जनता की कवि हैं।

तमिल साहित्य में संगमकाल से लेकर भक्तिकाल तक अनेक नारी भक्तिमती कवियों को हम देखते हैं। लेकिन हिन्दी साहित्य में अकेले मीरा को छोड़कर किसी अन्य नारी कवि के दर्शन नहीं होते। राजस्थानी समाज के उस युग में नारियों को न परिवार में, न ही समाज में कोई गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। परिवार की चार दीवारों के अतिरिक्त बाहरी समाज में कहीं भी उन्हें आजादी प्राप्त नहीं थी। 'सती', 'जौहर' जैसी बुरी प्रथाओं की वजह से वे महत्वहीन स्थिति में ही रह रही थीं, ऐसा प्रतीत होती है। दक्षिण भारत के सामाजिक परिवेश के विपरीत परिवेश ही वहाँ दीखता है। ऐसे विपरीत परिवेश में, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में एक श्रेष्ठ उत्तम भक्त-शिरोमणि के रूप में मीराबाई हमें दिखाई देती हैं। यह हम सबको विस्मयकारी स्थिति ही लगती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मीरा का स्थान : मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति आन्दोलन के दौरान निकले अनेकानेक भक्तिमार्गों में नाथयोगी, सिद्ध, सूफीमार्ग के दरवेश, कृष्णभक्ति एवं रामभक्ति मार्ग के अनेक भक्त कवि अवतरित होकर समाज का सही मार्गदर्शन करते रहे। उन भक्त-शिरोमणियों में कबीरदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास जैसे उल्लेखनीय भक्त हुए। इन विभिन्न भक्तिमार्गों में कहीं भी हमारी भक्त शिरोमणि मीराबाई का नाम प्रथम पंक्ति या द्वितीय पंक्ति में नहीं है। यह शोचनीय स्थिति है।

मीरा के वैयक्तिक जीवन का संघर्ष, कृष्ण के प्रति उनका अटूट एवं अपार प्रेम, लगन, उनके गीतों में ध्वनित नारी स्वर की सामाजिक जागृति आदि हिन्दी भक्ति आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जायेगी। इतना होते हुए भी हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखनेवाले हमारे दिग्गज इतिहासकार एवं साहित्य-समीक्षकों ने हमारी मीरा की उपेक्षा ही कर दी है, ऐसा ही प्रतीत होता है। हिन्दी साहित्य-समीक्षा में मीरा की देन, उनका महत्व जानने-पहचानने के प्रयत्न बहुत कम हुए हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनको आज तक उचित स्थान प्राप्त नहीं है। वे उपेक्षित और तिरस्कृत कवयित्री के रूप में ही अधिष्ठित हैं।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखनेवाले प्रथम इतिहासकार मिश्रबन्धु के ''हिन्दी नवरत्न'' ग्रंथ में कहीं भी मीरा का आलेख प्राप्त नहीं। विख्यात समीक्षक एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास, जायसी, सूरदास आदि पर तो जमकर समीक्षा लिखी है, मगर उन्होंने मीरा की उपेक्षा ही कर दी है। वहाँ तिरस्कार की दृष्टि ही दीखती है। इसी प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर एवं सूर पर तो खूब लिखा, मगर मीरा पर उनकी दृष्टि नहीं गयी। हिन्दी साहित्य के प्रख्यात समीक्षक डॉ0 नगेन्द्र, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ0 रामविलास शर्मा, डॉ0 नामवर सिंह जैसे समीक्षकों की दृष्टि भी मीरा पर नहीं गयी। उन लोगों ने मीरा की उपेक्षा ही कर दी है। हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में भी मीरा के पद लगभग उपेक्षित ही हैं, ऐसा लगता है। यह रीति मन को दुःखित करती है।

अन्य भारतीय भाषाओं के नारी भक्तों की तुलना करने के कुछ प्रयास भी हाल में किये जा रहे हैं। डॉ0 एन0 सुन्दरम, डॉ0 केशवमूर्ति जैसे दक्षिण के हिन्दी-सेवियों द्वारा आण्डाल, अक्क महादेवी के साथ तुलना करते हुए शोधकार्य करने के कुछ प्रयत्न भी किये गये हैं। इसी प्रकार काश्मीर की लल्लदेवी एवं तमिल की शैव भक्तिमती कारैक्काल अम्मैयार के साथ तुलना करने के कुछ प्रयत्न भी हुए हैं।

हाल ही में 2008 में डॉ0 अवधेश कुमार सिंह द्वारा संपादित अँग्रेजी ग्रंथ "The Voice of Women: Gargi to Ganga sati" प्रकाशित हुआ। उसमें वैदिक-कालीन नारी-ऋषि गार्गी, थेरीगाथा की भिक्षुणियों, तमिल प्रदेश की आण्डाल, कर्नाटक की अक्कमहादेवी, सूफी कवि राफिया पसारी, बंगाल की चन्द्रावर्ती, राजस्थान की मीरा, महाराष्ट्र की जणाबाई, अभिजीबाई, आन्ध्रप्रदेश की तारिकोण्ड वेगमाम्बा, सौराष्ट्र की गंगासनी जैसी अनेक भक्त कवयित्रियों के जीवन और उनके कृतित्व के बारे में संक्षेप में विवरण दिये गये हैं। सन् 2006 में डॉ0 सुभद्रा देसाई द्वारा अंग्रेजी में लिखा "Indian Women Seers and their songs : the unfeltered note" नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। उसमें नारी शक्ति-मातृशक्ति का आदर करने का अनुरोध प्राप्त है। उनकी उपेक्षा या तिरस्कार करना मानव कुल के लिए अवमानना है, इस पर जोर दिया गया है।

❑❑❑

डिज़नीलैंड की सैर

● वीणा गौतम
नई दिल्ली

पर्यटन किसी भी क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति को समझने का सबसे सशक्त माध्यम है। आदि काल से ही मनुष्य घूमना-फिरना पसंद करता रहा है। पहले लोग अपने भरण-पोषण के लिए अर्थात पेट की भूख को शान्त करने के लिए इधर से उधर घूमा करते थे, परन्तु आज अपनी जिज्ञासाओं के कारण, अनुकूल स्वास्थ्य-लाभ, मानसिक शान्ति और प्रकृति की गोद में सान्निध्य पाने के उद्देश्य से भ्रमण करते हैं, जिसे पर्यटन की संज्ञा दी जाती है। किसी ने कहा भी है-

''सैर कर दुनियां की गाफिल जिंदगानी
फिर कहाँ
जिंदगानी गर रही तो नौजवानी फिर कहाँ''

बड़ा बावला होता है मानव-मन अपने व्यस्ततम् क्षणों में से समय निकालकर कभी चंचल पंछी की तरह हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर पहुंच, नीलगगन पर उड़ते बादलों की तरह खुद भी उड़ान भरना चाहता है; चाँद- तारों के रूप में हर पल चमकना- चहकना चाहता है, तो कभी सागर की गरजती- बलखाती, डूबती- उतराती लहरों पर हिलोरें लेते हुए सागर की गहराइयों में समा जाना चाहता है। वहाँ उतर कर असंख्य जगमगाती मणि-माणिक्य रूपी खुशियों से अपने दामन को भर लेना चाहता है। नित नूतन सौंदर्य को देखने, जानने और उससे परिचित होने की अपार लालसा से भरा होता है मानव मन। तभी तो उसका जिज्ञासु मन अनेकानेक पर्यटन स्थलों की तलाश करता हुआ विश्व के मानचित्र को खंगाल डालता है।

भोजन में नमक का और पान में चूने का जो महत्व होता है, वही महत्व मानव-जीवन में पर्यटन का होता है। पर्यटन मानव की बहुआयामी छवि को निखारता है। पर्यटन के दौरान मानव उन अनेक खूबसूरत स्थलों की यात्रा करता है, जिनके विषय में उसने केवल किताबों की कहानियों, उपन्यासों या कविताओं में पढ़ा होता है। वह उन स्थानों को देखता है तो उनकी खूबियाँ और कमियाँ उसे समानान्तर रूप में दिखाई देती हैं। खूबियाँ या सौन्दर्य जहाँ उसके मन को गहराई से बांधते और प्रभावित करते हैं, वहीं कमियां उसे कुछ सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। इससे उसकी विचार-शक्ति को बढ़ावा मिलता है। इसी से प्रेरित होकर वह बड़ी सहजता से कलम संभाल लेता है और फिर वह स्वयं उन पर्यटन-स्थलों का ऐसा मनोहारी चित्र उकेरता है कि पाठकों के नेत्रों के समक्ष वह स्थल और उसका सौंदर्य साकार हो उठता है। लिखते समय वह कल्पनाओं का ताना-बाना भी बुनता चलता है और कल्पना के प्रयोग से प्रस्तुत चित्र को और अधिक प्रभावोत्पादक बना लेता है। इस तरह पर्यटन का पहला और उल्लेखनीय फायदा तो यह है कि व्यक्ति की विचार-शक्ति और कल्पना-शक्ति का नया आयाम खुलता है।

दूसरी बात यह कि पर्यटन से देश-विदेश की जानकारी सहज ढंग से प्राप्त हो जाती है। पुस्तकीय ज्ञान उतना प्रभावी नहीं होता, जितना कि प्रत्यक्ष ज्ञान। पर्यटक नये-नये स्थानों से जुड़ी ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक खूबियों से परिचित होता है, जिससे उसका ज्ञान समृद्ध होता है। साथ ही, अलग-अलग क्षेत्रों की साहित्यिक गतिविधियों और संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जिससे अनेक क्षेत्रों के रीति-रिवाज , पर्वोत्सव, परम्पराओं, खान-पान, रहन-सहन तथा सभ्यता-संस्कृति आदि से वह रूबरू होता है। तीसरी बात, यात्रा के दौरान अपरिचितों से उनकी मुलाकात होती है, वैमनस्यता दूर होती है, भाई-चारा और प्रेम-संबंध प्रगाढ़ होता है, मन उदार और विशाल बनता है और पूरा देश और विश्व अपना-सा प्रतीत होता है। इस तरह राष्ट्रीय एकता और निकटता बढ़ाने में पर्यटन का अहम योगदान है।

चौथी बात, प्रकृति के सहज साहचर्य से उसकी आत्मा जुड़ती है जिससे प्रकृति के प्रति वह संवेदनशील बनता है और उसकी रक्षा के प्रति सचेत और सतर्क होता है।

विशेष बात यह है कि विश्व के प्रमुख पर्यटन-स्थलों के बारे में जब उसे जानकारी प्राप्त होती है तो किसी भी राज्य की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मानव संसाधन के नियोजन एवं भावी रोजगार की संभावनाओं का भी उसे पता चलता है। वर्तमान समय में पर्यटन एक उद्योग का रूप धारण कर चुका है। कई प्रदेशों की अर्थव्यवस्था पर्यटन पर आधारित है, जैसे- जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश आदि। यहाँ आने वाले पर्यटकों की संख्या सर्वाधिक होती है। साल भर यहाँ घूमने-फिरने के लिए लोग आते-जाते हैं, जिससे ये पर्यटन-स्थल फलते-फूलते हैं; इस तरह लोगों को आजीविका का साधन मिलता है।

इन सबके अतिरिक्त विशेष बात यह है कि पर्यटन दैनंदिन जीवन की भारी-भरकम चिंताओं से दूर कर देता है। व्यक्ति जिस दशा में रहता है, उसी दशा में जीवन को आनंदमय ढंग से जीता है। इस तरह पर्यटन से व्यक्ति का तन और मन, दोनों प्रफुल्लित रहते हैं, जिससे स्वास्थ्य बेहतर होता है। यदि कहा जाये की 'प्रकृति के निकट जाना' 'चिकित्सक से दूर रहने का' सबसे आसान, सरल और आनंददायक इलाज है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

किंतु कुछ लोग इन पर्यटन-स्थलों को दूषित कर देते हैं। जगह-जगह हमें कचरे का ढेर दिखाई देता है। पानी की बोतलें, प्लास्टिक थैले, डिस्पोजल डिब्बे-ग्लास आदि के अतिरिक्त खाद्य सामग्रियाँ आदि बेतरतीब ढंग से रास्तों में पड़ी मिलती हैं; जो वहाँ के वातावरण को खराब करता है। यही प्रदूषणकारी तत्व जब हवा, पानी और मिट्टी में जाकर मिल जाते हैं तो घातक बीमारियाँ पैदा करते हैं, फलतः लोग बीमार हो जाते हैं और पर्यटन-स्थलों का आनंद लेने से वंचित रह जाते हैं। वहीं दूसरी ओर वहाँ के सरोवरों, झरनों, नदियों आदि के जल को यदि इन सामग्रियों से गंदा कर दिया जाता है तो इस प्रदूषण से उन स्थलों पर पनपने वाले लघु जीवों जैसे मेंढक, मछलियों आदि की जान भी खतरे में पड़ जाती है। इसलिए हमें कोशिश करनी चाहिए कि जितना ज्यादा हो सके हम पर्यटन स्थल को स्वच्छ रखें, उसकी प्राकृतिक खूबसूरती को बनाये रखें, ताकि हम इन स्थलों का भरपूर आनंद उठा सकें। अब हांगकांग के डिज्नीलैंण्ड की ओर चलते हैं, जो अनोखा है। **हांगकांग का डिज्नीलैंण्डः** हांगकांग इंटरनेशनल एयरपोर्ट पर विमान उतरने की घोषणा हुई तो मैं खिड़की से झांकने लगी। नीचे सिर्फ समुद्र दिख रहा था। फिर हरे-भरे पहाड़ दिखने लगे। नजारा ऐसा था कि साढ़े पांच घंटे की हवाई यात्रा की थकान उड़न-छू हो गई। समुद्र व पहाड़ों के बीच ऐसी कोई जगह दिख नहीं रही थी, जहां लैंडिंग का अनुमान लगाया जा सके। लेकिन हवा में उड़ने के बाद जमीन पर आने का अहसास तो होना था और झटका भी लगना ही था। वह लगा और अब हम हांगकांग इंटरनेशनल एयरपोर्ट पर थे। भारत से ढाई घंटा आगे था यहां का समय। इमिग्रेशन के बाद हमें शटल से डिज्नीलैंण्ड रिजॉर्ट-स्थित हॉलीवुड होटल के लिए रवाना होना था।

बाहर का तापमान 33 डिग्री सेल्सियस था। उमस ऐसी कि दिल्ली की याद आ गई। 162 लोगों का ग्रुप था हमारा। होटल की चार बसें लेने आई थीं। लंच के बाद हमें उस दुनियां की सैर पर जाना था जिसे मैं ड्रीमलैण्ड कह सकती हूं। सभी लोग सवार हो गए बसों में और निकल पड़े गंतव्य की ओर। अनजान देश की लंबी घुमावदार सड़कों पर दौड़ती बस की खिड़की से दिख रहे दृश्य बता रहे थे कि विकास में हमसे कई साल आगे है यह छोटा-सा देश।

हर पल जीने की चाहतः एयरपोर्ट से डिज्नीलैंण्ड का सफर बीस मिनट का था। बाहर नीले गहरे समुद्र के किनारे चलती साफ-सुथरी सड़क, एलीवेटेड रोड्स, केबल पर टिके पुल, टनल और अंडरपास आधुनिक इंजीनियरिंग का नमूना पेश कर रहे थे। थोड़ी देर बाद हम लैंटाऊ आईलैण्ड के उत्तरी ओर पेनीज बे पर 320 एकड़ में बने डिज्नीलैण्ड रिजॉर्ट स्थित हॉलीवुड होटल के कंपाउण्ड में पहुंच गए।

दिन के डेढ़ बज गए थे, एयरपोर्ट के भीतर की चहलकदमी ने भीतर के चूहों को जगा दिया था। जल्दी-जल्दी भोजन कर स्वप्ननगरी की ओर निकल पड़े हम। दरअसल डिज्नी चैनल ने अपने कॉन्टेस्ट विनर बच्चों को परिवार के साथ डिज्नीलैण्ड सैर का तोहफा दिया था। इन्हीं 32 परिवारों के साथ हम कुछ गिने-चुने मीडियाकर्मी भी हांगकांग आए थे। होटल बस ने डिज्नीलैण्ड मुहाने पर छोड़ दिया। आगे बढ़े तो सामना हुआ पानी की धार पर झूलते मिकी माउस से। मेन स्ट्रीट से ढाई बजे परेड निकलने वाली थी। बैंड पर धुनें बजने लगीं और हांगकांग की पारम्परिक वेशभूषा में सजी उछलती-कूदती बालाओं के पीछे एक-एक कर आते गए डिज्नी के मशहूर चरित्र-मिकी-मिनी की जोड़ी, गुफा, प्लूटो, पूह, डफी, टाइगर, श्रेक, डोंकी और गुस्से से आंखें तरेरती डोनाल्ड डक।

लौट आया बचपनः वंडरलैण्ड पांच क्षेत्रों में बटा हुआ है। मेनस्ट्रीट यू0एस0ए0, टुमॉरो लैण्ड, एडवेंचर लैण्ड, फैंटसी लैण्ड और

टॉयस्टोरी लैण्ड। मेन स्ट्रीट यू0एस0ए0 को पचास के दशक की अमेरिकी गलियों की शक्ल दी गई है। टुमॉरो लैण्ड में अंतरिक्ष के रहस्यों से दो-चार होना अलग ही अनुभव था। एडवेंचर लैण्ड में जंगल, नदी और टार्जन ट्री हाउस है। यहीं हमारे लिए रिजर्व थे लॉयन किंग शो के टिकट। विश्व में केवल दो जगह होने वाले इस म्यूजिकल शो में आदिवासी युवती सिंबा की प्रेमकथा का सुंदर चित्रण है।

स्लीपिंग ब्यूटी कैसल डिज्नीलैण्ड का मुख्य आकर्षण है। यह फैंटसी लैण्ड है। यहां कई झूले हैं जो बच्चों को रोमांच से भर देते हैं।

टॉयस्टोरी लैण्ड में यू-शेप रोलर कोस्टर पर लोगों को चिल्लाते देख पास फटकने की हिम्मत नहीं हुई। इस पूरी सैर में छुक-छुक की ध्वनि हमेशा साथ रहती है। भाप के इंजन वाली टॉयट्रेन इस थीम पार्क का 20 मिनट में चक्कर लगवाती है। बेशक डिज्नी का विचार पचास साल पुराना है, पर 21वीं सदी का अद्‌भुत नमूना है यह थीम पार्क।

रंग प्रकृति और इंसान के: डिज्नीलैण्ड की सैर अभिभूत कर रही थी, पर हांगकांग शहर देखने का लालच भी कम नहीं हो रहा था। कैसल पर रात आठ बजे होने वाले फायरवर्क्स का शो छोड़ने का फैसला ले चुके हम पांच साथी हांगकांग जाने के उपाय ढूंढ़ने लगे। पता चला डिज्नीलैण्ड में ही एम0टी0आर0 स्टेशन है। मेट्रो आपको सीधे सनी बे ले जाएगी। वहाँ से किसी भी कोने में जा सकते हैं। चूंकि समय कम था, इसलिए हमने टैक्सी का विकल्प चुना। हमें स्थानीय भाषा नहीं आती थी और ड्राइवर के लिए अंग्रेजी समझना मुश्किल। खैर, एक स्थानीय सज्जन ने टैक्सी वाले को बताया कि हम सिम शा सुई डेक जाना चाहते हैं। चलते ही वे स्काईस्क्रैपर्स नजर आने लगे थे, जिनके लिए हांगकांग की अलग पहचान है। शाम के धुंधलके में समुद्र और बहुमंजिली इमारतों के बहुत सुंदर दृश्य दिख रहे थे। डिज्नीलैण्ड से सिम शा शुई पहुंचने में टैक्सी का किराया 183 हांगकांग डॉलर आया। जबकि मीटर कम दिखा रहा था। ड्राइवर से कारण पूछा तो उसने हमें कार दरवाजे पर चिपके कागज दिखा दिए। कुछ भी पढ़ पाना हमारे बूते से बाहर था। इसलिए पूरे पैसे चुका कर डेक की ओर बढ़ गए। रात गहरा गई थी, पर कालिमा धारण कर चुके समुद्र के पीछे रंग-बिरंगे सितारों-सी चमक थी। अब यहां लेजर शो होने का समय हो आया था। आठ बजे होने वाले इस शो में समुद्र के इस पार से लाइटें उस पार डाली जा रहीं थीं। कुछ देर रुकने के बाद हम निकल पड़े हांगकांग की गलियों में। बड़ी-बड़ी बिल्डिंग्स के बीच संकरी गलियां गुलजार थीं। हर तरफ भारी भीड़ हमें अपने बाजारों और गलियों की याद दिला रही थी। लौटने के लिए मेट्रो की सवारी की बात सबको जंची। अब फिर मेट्रो स्टेशन ढूँढ़ना और डिज्नीलैंण्ड का रास्ता पूछना कठिन काम था। एक लड़की ने बताया कि ईस्ट सिम शा सुई से मेट्रो लेकर आपको नाम चियोंग तक जाना होगा, वहां से सनी बे के लिए मेट्रो मिलेगी और फिर सनी बे से डिज्नीलैंण्ड के लिए मेट्रो बदलनी होगी। ऐसा ही हमने किया और हम एक घंटे से भी कम समय में डिज्नीलैंण्ड पहुंच गए। वहां से होटल के लिए फ्री बस सेवा मिल गई।

सिनेमा के इतिहास की गवाही: अगले दिन फ्लाइट देर शाम की थी। एक बार और हांगकांग जाने और डिज्नीलैण्ड का चक्कर लगा लेने का मोह नहीं छूटा। जल्दी उठकर डिज्नीलैण्ड से मेट्रो ली और एवेन्यू ऑफ स्टार देखने की चाहत में फिर पहुंच गए हांगकांग। यह अनोखी जगह हांगकांग के सिनेमा के सौ साल के इतिहास की गवाह है। मूवी स्टार ब्रूस ली की 2.5 मीटर ऊंची पीतल की प्रतिमा भव्य नजर आती है। हांगकांग का मुख्य आकर्षण है स्टार फेरी और इसका अनुभव लिए बिना हम कैसे वापस आते! सो हांगकांग आइलैण्ड से कोवलून मेनलैण्ड तक के लिए फेरी शटल ली। रोमांचक सफर था यह भी। हांगकांग को देखकर लगता है कि यहाँ नए और पुराने का अद्‌भुत संगम है। जनसंख्या का दबाव यहाँ भारत से अधिक है। जब-जब सिग्नल ग्रीन होता, भारी संख्या में लोग सड़क पार करते थे। अच्छी बात यह लगी कि इतने लोग एक साथ चल रहे थे। लेकिन न तो किसी के चेहरे पर गुस्सा था और न ही कोई कुंठा। सारे काम व्यवस्थित तरीके से चल रहे थे। समय की कमी ने ज्यादा देर रुकने नहीं दिया और फिर मेट्रो से डिज्नीलैण्ड आ गए। हम लैंटाऊ आइलैण्ड पर ही थे जो हरे-भरे जंगलों और कम इमारतों के चलते काफी खूबसूरत दिखाई देता था। पर जॉयंट बुद्‌धा देखने से वंचित रह गए। सुना था कि आसमान के नीचे बैठे हुए महात्मा बुद्‌ध की 26 मीटर ऊंची मूर्ति दुनियां भर में अकेली है।

डिज्नीलैण्ड में छुक-छुक की आवाज हर वक्त साथ चलती रही। इस ट्रेन की सवारी करने की इच्छा थी। भाप के इंजन से जुड़ी डिज्नी थीम की टॉय ट्रेन पर बीस मिनट की राइड ले ही डाली। अब बारी थी हल्की-फुल्की शॉपिंग की, तो डिज्नीलैण्ड में ऐसी कई दुकानें हैं जहाँ से डिज्नी थीम के शो पीस, सॉफ्ट टॉयज, स्टेशनरी सहित ढेरों आइटम खरीदे जा सकते हैं।

कुल मिलाकर हांगकांग का यह डिज्नीलैण्ड एक अलग ही फैण्टेसी की दुनिया है। यहाँ पहुँचकर आदमी कल्पना के पंखों पर उड़ने लगता है और जीवन की आपाधापी से कुछ समय के लिए पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यही इस स्वप्नलोक की सार्थकता है।

❑❑❑

छुट्टियाँ

● जाबा चक्रवर्ती
कोलकाता शाखा कार्यालय

दस साल की सीमा और उसका आठ वर्षीय भाई आयुष हाल ही में कोलकाता नगर के एक नए फ्लैट में रहने आए थे। उनके पिता का कोलकाता स्थानांतरण हो गया था। सीमा सुदर्शन होने के साथ-साथ पढ़ाई में भी तेज थी। नए परिसर में उनका कोई दोस्त नहीं था और वे अकेला महसूस कर रहे थे। उनकी माँ नौकरी करती थीं। वे एक अनुशासनप्रिय महिला थीं। उनके पास परिवार के लिए बहुत कम समय बचता था, इसलिए वह काफी हद तक नौकरानी पर निर्भर थीं, जो उनके साथ दशकों से काम कर रही थी। बच्चों के पिता इतिहास के प्रोफेसर थे और हमेशा किताबों और छात्रों में डूबे रहते थे। वे ज्यादातर घर पर ही रहते थे।

माता-पिता ने भांप लिया कि नई जगह पर बच्चे उदास और अकेले हैं और वे उतने प्रफुल्ल नहीं हैं, जितने आम तौर पर रहते हैं। उन्होंने बच्चों के चचेरे भाइयों को कोलकाता बुलाने का फैसला किया। वे उत्तर बंगाल के एक गांव में रहते थे।

अपनी उम्र के हिसाब से अधिक लंबा और अच्छी कदकाठी का ग्यारह साल का अजय और आठ साल की एक शर्मीली-सी लड़की रीना तड़के अपने चाचा के साथ उनके फ्लैट पर पहुँच गए। बच्चे पहली बार मिल रहे थे और बहुत उत्साहित थे। वे एक-दूसरे से गले मिले और तुरंत दोस्त बन गए। नौकरानी ने सूटकेस उठाया और सभी उसके पीछे-पीछे अतिथि कक्ष में चले आए।

अजय ने सूटकेस खोल लिया। सीमा और आयुष एक भूरे रंग का कागज का पैकेट उत्सुकता से देख रहे थे। उसमें बीज थे। जब उन्होंने पूछा कि ये क्या है, तो अजय ने जवाब दिया कि वह उन्हें दिखाएगा कि पौधे विकसित कैसे होते हैं। सीमा सोच रही थी कि उसने वनस्पति-विज्ञान में सीखा है कि बीज से पौधा कैसे उगाया जाता है और अब वह उसका प्रैक्टिकल करेगी! बच्चों ने मिलकर घर की टांड से पुराने अनुपयोगी बर्तन व घड़े आदि निकाले और उनमें मिट्टी भर दी। फिर उनमें बीज डाले और पानी छिड़क दिया।

रोज वे उत्सुकता से देखते कि बीजों से अंकुरण हुआ कि नहीं। फिर एक दिन सुबह जब धूप खिली हुई थी, उन्हें अपने श्रम का फल दिखाई पड़ा! बालकनी हरे-भरे, नन्हे-नन्हे, कोमल पौधों के एक छोटे से बगीचे में तबदील हो चुकी थी! बच्चे उत्साह से चीखते हुए उस ओर झपट पड़े!

एक दिन चारों ने सेंट स्टीफन्स स्कूल जाने का फैसला किया। सीमा और आयुष वहीं पढ़ते थे। वहां हास्टल में रहने वाले बच्चे कबड्डी खेल रहे थे। अजय खेलों का बहुत शौकीन था। उसका मन खेलने के लिए ललचा उठा। वे सभी अंदर चले गए। अजय ने लड़कों से अनुरोध किया कि क्या वह उनके साथ खेल सकता है। ग्रामीण-से दिखने वाले अजय को देखकर शहरी लड़के उसका मजाक उड़ाने लगे और उसे तरह-तरह के नामों से पुकारने लगे। कुछ तो उससे हाथापाई भी करने लगे। अजय ने कुश्ती का प्रशिक्षण लिया हुआ था। उसने एक लड़के को चारों खाने चित कर दिया। इस प्रकार विजयी भाव से वे वापिस लौटे। रास्त में उन्होंने आइसक्रीम भी खाई।

अगले दिन सीमा के पिता को स्कूल के अधिकारियों से शिकायत मिली कि हास्टल में अनधिकार प्रवेश करने और बच्चों के साथ मारपीट करने के लिए उन पर पांच हजार रुपये का जुर्माना लगाया गया है। सीमा के पिता गुस्से से भर उठे और सीमा और अजय को बहुत डांटा। उन्हें 20 बार सीढ़ियों पर चढ़ने-उतरने की सजा दी गई। अजय एक एथलीट था, इसलिए उसके लिए यह मुश्किल नहीं था, लेकिन सीमा के लिए यह कष्टप्रद था। वह शायद ही कभी खेलती थी, क्योंकि उसे कभी भी समय नहीं मिला। होमवर्क और परीक्षाओं में ही वह खपी रहती थी। सीमा की यह हालत देख अजय उसे चिढ़ाने लगा कि यह सब आउटडोर खेल न खेलने का ही नतीजा है! सीमा के पास कोई जवाब नहीं था।

आयुष कभी भी खुद को इन चीजों (आउटडोर खेल) से जोड़ नहीं पाया। वह वीडियो गेम में व्यस्त रहता था। उसके पिछले जन्मदिन पर यह उसे उपहार में मिला था। उधर रीना और सीमा अपना समय अलग-अलग भूमिकाएं निभाकर बिताती थीं, कभी माँ और बच्चे और कभी शिक्षक और छात्र बनकर। वे अलमारी से साड़ियां निकाल लेती थीं। सीमा की मां की लिपस्टिक और काजल तो लगभग खत्म हो चुके थे। स्थानाभाव के कारण आसपास कोई पार्क या खेल का मैदान न होने से उनके लिए बाहर जाना और बाहर के खेल खेलना संभव नहीं था। अजय आउटडोर खेल खेलने का अभ्यस्त था। इस हालत में वह बेचैनी और ऊब महसूस करने लगा था। पिज्जा, बर्गर, आईक्रीम और चिप्स जैसी चीजें अब उसे और नहीं लुभा रही थीं। उसे घर की याद आने लगी थी।

उनकी बोरियत दूर करने के लिए सीमा के पिता उन्हें शनिवार को चिड़ियाघर ले गए। सब बच्चे उत्साहित थे। आयुष तो जिराफ को लंबे-लंबे पैरों से चलते हुए देख हैरान रह गया! ऐसा लग रहा था जैसे जिराफ अपनी शान दिखा रहा हो! रीना बाघ की गुर्राहट से दहल गई! यह यात्रा बहुत मजेदार रही। शाम तक सब बहुत थक गए थे।

अगले दिन रविवार था। बच्चों की छुट्टी का आखिरी दिन था। उस दिन पूरा परिवार शहर में, मेले में घूमने गया। विशालकाय पहिया-झूला मेले का सबसे बड़ा आकर्षण था, लेकिन जब वह चलने लगा तो सबसे पहले सीमा और फिर बाकी बच्चे जोर-जोर से चिल्लाने लगे। छोटा आयुष और रीना बहुत घबरा गए! लेकिन अजय को मजा आ रहा था। वह घबराता नहीं था। उन्होंने एक-एक करके कई खेलों का मजा लिया।

वह दिन बड़ा मजेदार रहा। बच्चों ने खूब आनंद लिया था। फिर रात का खाना खाकर वे घर लौट आए। अगले दिन स्कूल शुरू हो रहा था। वे एक दूसरे से गले मिले और सोने चले गए।

अजय और रीना अगले दिन सुबह पहली ट्रेन से जा रहे थे। सीमा और आयुष सुबह पांच बजे उठे और नीचे आ गए। अजय अपने चाचा के बगल में खड़ा था। उन्होंने उनींदी रीना को सँभाला हुआ था। सब बहुत उदास थे। अश्रुपूर्ण विदाई के बाद तीनों टैक्सी में सवार हो गए। देखते-देखते टैक्सी आंखों से ओझल हो गई और बच्चे अपने शयनकक्ष में जाकर बिस्तरों में दुबक गए। ❑❑❑

मैं क्या जवाब दूँ !

कविता

● डॉ. सदा बिहारी साहू
मुंबई कार्यालय

बिखरे पड़े सपने सारे
एक मेडल को सीने परे ताने
कौन जीते! कौन हारे।
जब गोली चले बंकर-बंकर
कोई देखे शंकर कंकर-कंकर
कड़े शब्दों में निंदा-उठे प्रतिशोध की चिंगारी
देश के आगे ना कोई भोले ना कोई बंधु ना कोई यारी
फेसबुक जले, ट्विटर जले
सोशल मीडिया में मिसाइल चले
ग्रेनेड चले, राकेट चले ...
बहुमत के इस खेल में
राष्ट्रवाद के यज्ञ में
देश भक्ति की ज्वाला जले
आओ भाइयो, बहनों आओ
देश-प्रेम के गीत गाते जाओ
ये समय है बलिदान का
प्रतिशोध के आह्वान का
शत्रु हैं आज प्रबल
है वो बाहर है वो अंदर
आओ इनको कुर्बान करें
या तो मारें या फिर मरें।
कुछ लोग हैं-एक भीड़ है
बेखबर सी एक दौड़ है
मैं भी उस भीड़ का हिस्सा हूँ
असंगत हूँ, दुर्बल हूँ
तभी चुपचाप भागता रहता हूँ
बस डर लगा रहता है
वे वादियाँ कैसी हैं ?
वहाँ पाइन के पेड़ हैं या नारियल के ?
वहाँ सेब पीला है या संतरी ?
बर्फ सफेद है या भगवा ?
कभी अगर मुझसे पूछे कोई
क्या जबाब मैं दूंगा ?

❑❑❑

कविता

दो बाल गीत

● डॉ. रामवृक्ष सिंह
प्र.का., लखनऊ

(1)

ऋतुओं की रानी

आ धमकी ऋतुओं की रानी।
पर्वत झलें हवा बर्फानी।।
छाया रह-रह आँख दिखाती।
तीर सरीखा चुभता पानी।।

कोहरे की देखो मुटमर्दी।
गिरता वहीं जहाँ हो सर्दी।।
किससे जाकर करें शिकायत
सूरज की भी उतरी वर्दी।।

बादल के पीछे से झाँका।
जाड़े का परिमाण है आँका।
अब जाकर औकात में आया
गरमी भर बनता था बाँका।

रात को जलवा और दिखाती।
सबसे सीने पर चढ़ जाती।।
थर-थर थर-थर काँपे धरती
ऋतुओं की रानी जब आती।।

❑❑❑

(2)

धूप है आई- धूप है आई

आसमान ने ओढ़ रखी थी कुहरे की इक धुली रजाई।
काँप रहे थे जीव जन्तु सब, नहीं था पड़ता कुछ दिखलाई।
अभी-अभी जाने किसने आ, जरा रजाई है सरकाई।
चमक उठे हैं सबके चेहरे- धूप है आई, धूप है आई।
पेड़ों ने पत्ते फैलाकर धूप दिखा, आरती उतारी।
वृन्त-वृन्त पर चटक-चटक कर कलियों ने सुगंध निज वारी।
खग-कुल ने प्रमुदित हो अपने नीड़ छोड़ डैने फैलाए।
पूँछ उठा चरने जाने की गो-धन ने कर ली तैयारी।
खेतों में फसलों के पत्तों पर बिखरे मोती के दाने।
आसमान से उतर रही है धूप हंसिनी उनको खाने।
कण-कण में उल्लास जगा है धरती के जाने-अनजाने।
धूप है आई धूप है आई, जीव जंतु सब लगे हैं गाने।
रोज रात को जब धरती पर घिरता है घनघोर अंधेरा।
कहीं रोशनी और उष्णता लेकर चलता एक चितेरा।
होता है आक्रान्त मनुज का हृदय कभी जब घोर निशा से,
तब-तब आकर धूप धरा पर करती है जीवन का डेरा।।
धूप के खिलने पर जन-जन का हृदय कमल भी खिल जाता है।
छँट जाते अवसाद के बादल, मंद-मंद मन मुसकाता है।
धूप के आने पर जीवन की नई आस करवट लेती है।
धूप की किरणों से जीवों का जन्मों का अद्भुत नाता है।

❑❑❑

आधुनिक शिक्षा

● सौरभ शुक्ला
प्र.का., लखनऊ

क्या हुआ हमारी शिक्षा को ? क्या हुआ हमारे शिक्षक को ?
क्या हुआ शिक्षादान का व्रत ? हर गुणी, अवगुणी, इच्छुक को।
कब शिक्षित करने का आंदोलन उद्योग में परिवर्तित हो बैठा ?
व्यवसायीकरण की आँधी में, उद्देश्य हो गया है औंधा।
अब शिक्षक ग्राहक ढूंढ़ रहे, विद्यालय डिग्री बेच रहे।
ज्ञानार्जन का कोई मोल नहीं, बस प्रतिशत-अंकों में खेल रहे।
ऐसी शिक्षा से तो भाई, रामानुज, कलाम न निकलेंगे,
नैतिक, सामाजिक, विवेकलब्ध, ज्ञानी-ध्यानी न पनपेंगे।
ऐसी शिक्षा को दें महत्त्व, जो नये विचारों को जन्मे,
पशु से मानव में हो विकास, मानवता के सेवक बनें बच्चे।

(हिन्दी पखवाड़े की 'चित्राधारित रचना' प्रतियोगिता में पुरस्कृत)

❑❑❑

चले आओ चले आओ

● अनन्त भाष्कर राय
प्र.का., लखनऊ

अभी शामें नशीली है, अभी रातें अँधेरी हैं
अभी खामोश है दरिया, चले आओ, चले आओ।।
अभी ना तुम पे पाबंदी, अभी ना हम पे पहरा है,
अभी आजाद हैं हम-तुम, चले आओ, चले आओ।।
अभी ये वक्त का पहिया बदलने वाला करवट है,
कहीं तन्हा न हो जाएं, चले आओ, चले आओ।।
अभी जो राह पकड़ी है बहुत अनंजान लेकिन है,
सितारा देखते कोई, चले आओ, चले आओ।।
अभी हमसे जुदा हो कर कोई बेहद अकेला है,
जरा एक बार कह भर दे, चले आओ, चले आओ।।
बहुत-से जश्न हैं बाकी बहुत खुशियाँ अधूरी हैं,
हो कोई एक तो अपना, चले आओ, चले आओ।।

एक लड़की जो जिन्दा रही

● कंचनलता पाण्डेय
हैदराबाद क्षे.का.

एक लड़की जो जिन्दा रही
ये वे दिन थे जब माँ मुझको
कोख छुपाए बैठी थी
दूसरी सन्तान बेटा ही हो
यह आस लगाए बैठी थी

आजी का कहना था अब बस
दूसरी बेटी नहीं चाहिए
एक की है बर्दाश्त
अब दूजी चिंता नहीं चाहिए

इस बेड़ी से पैर छुड़ाने
भेज दिया था क्लीनिक में
पता चला जब फिर बेटी है
शोक छा गया था घर में
सन्नाटे में कोशिश की थी
मुझसे पिंड छुड़ाने की
माँ के हाहाकार को कमरे में दबाने की
पर ईश्वर को मंजूर न था
अभी मेरा नालियों बह जाना ,
या कूड़ेदान में फेंका जाना
इसलिए माँ की जान पर बन आई
और कोख में मेरी जान बच पाई
बहुत खुश थी मैं कोख के अंदर
पर मेरे इम्तहान कई थे बाहर

ईश्वर ने मुझे सन्तान बनाया
पर लड़की का जीवन जीना था
जितने भी जहर हों जीवन में
सब हंसते, रोते पीना था

माँ की देखभाल ना हुई
ताकि मैं कमजोर रहूँ
यदि ना खत्म हुई क्लीनिक में
तो ऐसे ही मैं खत्म रहूँ

जन्म हुआ जब मेरा
घर में था कोई आनन्द नहीं
सारे मातम में डूबे थे
मुझसे कोई नेह नहीं

पांच बरस की दीदी को लगाया
मेरी देखभाल में,
केवल शक्कर-पानी पर
जिंदा रखने के कमाल पर
माँ मेरी थी सबकी चाकर
हरदम खटती रहती थी,
मौका पाती थी तब वो
मुझको दूध पिलाने का
जब मैं रो-रो ऊँचे स्वर में
सबको खूब खिझा देती
माँ अपनी किस्मत को रोती
गर वो बेटोंवाली माँ होती तो
औरों की तरह मानवाली होती

खैर नाम रखने की बारी भी आई
ना कोई आयोजन ,न कोई मिठाई
बुआ ने किया आने से इनकार
क्योंकि नेग के न थे कोई आसार
माँ ने 'ज्योति' नाम रखा
उसपर भी उसको डाट पड़ी
कौन सी ये कुलदीपक है ?
जो इसका ज्योति नाम रखा
माँ दुःख से भर गई ,
क्या मन का नाम भी न दे पाउंगी ?
हे माँ दुर्गा! अब तेरा ही नाम दे जाऊंगी

इसे कोई हटा ना पाएगा
इसे कोई मिटा ना पाएगा
और 'दुर्गा' मेरा नाम पड़ा जो
बस स्कूल में ही काम आया
घर में तो सब उल्टे, सीधे
शब्दों से मुझे बुलाते थे
तीन साल बाद मेरा भाई हुआ
जैसे उत्सवों का आगाज हुआ
इतने भोज, इतनी पूजा,
इतने तोहफे, इतने दान
मानों घर में निकल आई हो
सोने की खदान !!!
मैं खुश थी, भाई के आने से,
मिठाई खाने से और पहली बार
नए कपड़े सिलाने से !!
वरना तो बस दीदी के छोटे हुए
पुराने कपड़ों पर ही गुजारा था
ऐसा नहीं था कि मेरा परिवार
नितांत गरीबी का मारा था
पर मेरा अस्तित्व ही उसे कहाँ गंवारा था
सन्तान तो अब मेरे माँ-बाप को मिली है
हम तो सन्तान मिलने की प्रक्रिया के
अनचाहे बाय प्रोडक्ट थे
माना हम इस परिवार के हिस्से थे
पर हम गिनती में कब किसके थे ?
हम दोनों बहनें भाई की दिन-रात बलाएं लेती थीं
घर की चाकर तो थीं हीं अब खुशी से उसकी भी चाकर थीं
क्या खाएगा,क्या पिएगा, अपना हिस्सा भी दे देती थीं
माँ तो उसकी थी ही, अब हम दोनों भी उसकी माता थीं
हमको बस यही बताया था, भाई कितना जरूरी है
जब तक ना हो घर में लड़का, यह कितनी बड़ी कमजोरी है
घर में कुलदीपक है आया, परिवार बहुत ही खुश है
दीपक नाम रख नेग लेकर बुआ भी बहुत खुश है
हम भी उसको राखी बांधेंगी, बस इस ख्याल से खुश हैं
माँ हरपल उसपर न्योछावर थी ,
अपने वजूद पर गर्वित थी
भाई से प्यार हमें बहुत है पर
माँ हमसे ऐसे प्यार नहीं करती, यह कसक थी
लगता था कि कभी पूंछूं माँ मेरी क्या गलती है ?
पिताजी के लिए हम बस भोजन-पानी लाकर देने
और जनाने में संदेशा पहुँचाने का साधन थीं
कुछ बड़े हुए तब आँख खुली ,
अखबार पढ़े तो समाज में लड़की की औकात खुली
सती, अहिल्या और सीता का युग बीत गया
फिर भी नारी को अग्नि में जलाया जाता है ,
उसके जीवन को अब भी पाषाण बनाया जाता है
कब तक किसी लड़की को
लड़की होने की सजा दी जाएगी
वो लड़की जो मरी नहीं
उसे हर क्षण मारा जाएगा
हरपल उसका अपमान कर ,
सम्मान को रौंदा जाएगा
कब तक लड़कों के गुनाहों को
गलती कह पल्ला झाड़ा जाएगा
हरदम यही विचार, यही सवाल
मुझे सताते रहते थे, मुझे डराते रहते थे
घर से तो ज्यादा हमको दिन
स्कूल में अच्छा लगता था,
कल्पना चावला, किरण बेदी और
मैडम क्यूरी जैसी बनने का सपना था .
पर कहा गया नहीं, तू घर पर रहेगी ,
तू भाई से ज्यादा नहीं पढ़ेगी,
चूल्हा, चौका ही तो करेगी ,
ज्यादा पढ़कर क्या करेगी
जल्दी-जल्दी शादी करके
पिता ने अपना बोझा हटा लिया
बेटी ने अपने सारे सपनों को
टूटी सन्दूक में रखकर भुला दिया
अब माँ मेरी बूढ़ी है और पिता भी अक्षम हैं ,
जब भाई बात नहीं सुनता, तब माँ मुझसे रोती है,
पर दिल में चाहत रखती है, घर में पैदा नाती हो, नातिन नहीं !!
ये सोच है उसकी मजबूरी, जब समाज में पूरी समझ नहीं
बेटी सुकून दे कितना भी, पर उसकी वैसी कदर नहीं !!

❑❑❑

गतिविधियां और उपलब्धियां

कोलकाता कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

कोलकाता कार्यालय को नराकास से 2018–19 का श्रेष्ठता पुरस्कार

जयपुर–नराकास के तत्वावधान में तात्कालिक कविता लेखन प्रतियोगिता

प्रधान कार्यालय, लखनऊ में हिंदी पखवाड़ा

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक में राजभाषा कार्यान्वयन की गतिविधियां एवं उपलब्धियां

जुलाई-सितम्बर, 2019 के दौरान बैंक के विभिन्न कार्यालयों में हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की गई। इस दौरान भारत सरकार, राजभाषा विभाग के तत्वावधान में आयोजित राजभाषा कीर्ति पुरस्कार योजना के अन्तर्गत क्षेत्र-क में स्थित बैंकों के वर्ग में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। हिंदी दिवस, 14 सितम्बर, 2019 को नई दिल्ली में आयोजित भव्य समारोह में बैंक के उप प्रबंध निदेशक श्री अजय कुमार कपूर ने भारत के माननीय गृहमंत्री, श्री अमित शाह के कर-कमलों से उक्त पुरस्कार ग्रहण किया। इस अवसर पर श्रीमती अनिता सचदेवा, महाप्रबंधक (हिंदी) भी उपस्थित थीं।

बैंक के सभी कार्यालयों में 14 से 28 सितम्बर, 2019 के दौरान हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। समारोह का उद्घाटन 14 सितम्बर यानी हिंदी दिवस को दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। इस अवसर पर माननीय गृहमंत्री से प्राप्त संदेश का वाचन किया गया। सभी कार्यालयों में हिंदी टिप्पण, अनुवाद, निबंध लेखन, शब्द निर्माण, समाचार खोज, वह शब्द बताओ आदि रोचक प्रतियोगिताओं के साथ-साथ हिंदी विद्वानों के व्याख्यान आयोजित किए गये और उन्हें सम्मानित किया गया। सितम्बर माह के दौरान हिंदी में सर्वाधिक कार्य करने वाले लगभग 55 स्टाफ सदस्यों को नकद पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

गतिविधियां और उपलब्धियां

मुंबई कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

मुंबई कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

प्रधान कार्यालय, लखनऊ में हिंदी पखवाड़ा

प्रधान कार्यालय, लखनऊ में हिंदी पखवाड़ा

नई दिल्ली कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

नई दिल्ली कार्यालय में हिंदी पखवाड़ा

सिडबी स्वावलंबन

सिडबी
https://www.sidbi.in

दया रानी
मैं एक रोल मॉडल बनना चाहती हूं

रोल मॉडल बनें

धीरू यादव
मैं दूसरों को रोजगार देना चाहता हूं

पुलकुमारी देवी
मैं चाहती हूं कि मेरे बच्चे व्यवसाय से जुड़ें

बिरजू साह
मैं अपने व्यवसाय को और अधिक ऊंचाइयों पर ले जाना चाहता हूं

अपने व्यवसाय को ऊंचाइयों पर ले जाना चाहते हैं?
हम आपकी संवृद्धि के स्वप्नों को साकार करेंगे।

यदि आप या आपके कोई परिचित आजीविका/उद्यमशीलता गतिविधियों में लगे हुए हैं, तो हम उन्हें सूक्ष्म उद्यमी के रूप में विकसित करने और दूसरों के लिए प्रेरणा बनने में मदद कर सकते हैं।

आपको केवल **bit.ly/2LaGvCl** पर या नीचे दिए गए **QR** कोड को स्कैन कर आवेदन पत्र भरना है।

हम सभी आवेदनों की समीक्षा करेंगे और उसमें से चुने लोगों को उद्यमी रोल मॉडल माना जाएगा।

इन चयनित रोल मॉडलों को सहायता दी जाएगी जिससे कि वे अपने सपनों को साकार कर सकें।

इससे उन्हें स्वावलंबी बनने में मदद मिलेगी।

Follow us on SIDBIOfficial sidbiofficial sidbiofficial SIDBI Official
SIDBI(Small Industries Development Bank of India)

QR कोड स्कैन करें और आवेदन पत्र भरें